अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-42, अंक-05, 16-31 अक्टूबर, 2018

स्मृति-शेष

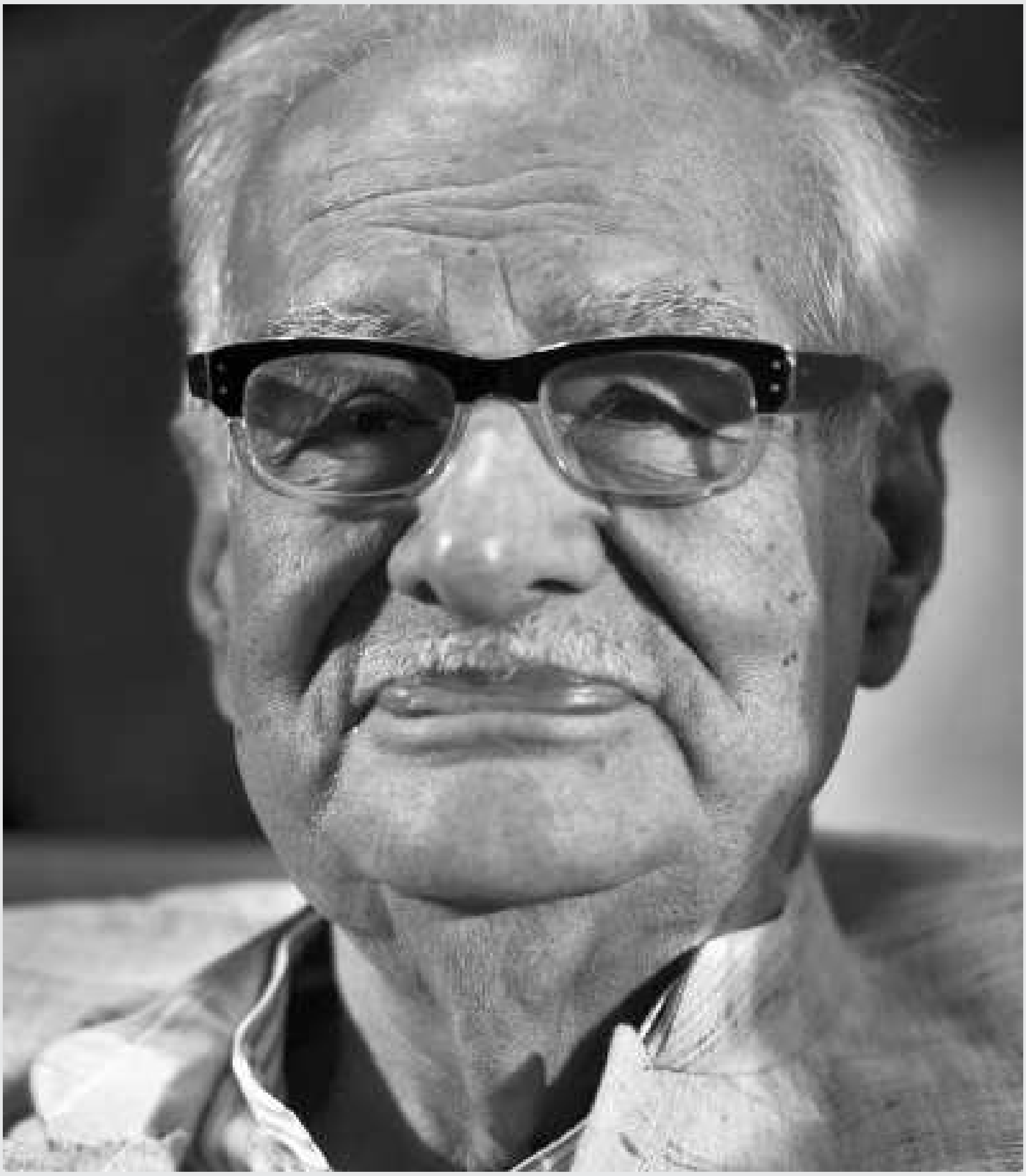

लोकतंत्र के प्रहरी : कुलदीप नैयर

14 अगस्त 1923 - 23 अगस्त 2018

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 42, अंक : 05, 16-31 अक्टूबर, 2018

संपादक
अशोक मोती
फोन : 0542-2440223

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. स्मृति शेष!...	2
2. भारतीय लोकतंत्र...	3
3. चुनाव से तनाव : मनाव से स्वराज्य...	5
4. 'बा' ऐसी दृढ़ निश्चयी थीं...	6
5. अटलजी से सीख सकते हैं हम...	7
6. कुलदीप नैयर हमारे जमाने के...	9
7. पत्रकारिता के शीर्ष कुलदीप नैयर...	10
8. सरहद के आर-पार अमन का...	11
9. कल्पेश याग्निक...	13
10. कहां है हमारा मीडिया...	15
11. उपन्यास - 'बा'...	17
12. गतिविधियां एवं समाचार...	19
13. कविता...	20

संपादकीय

स्मृति-शेष!

सर्वोदय-गांधीजनों की बंग्लादेश यात्रा से लौटकर आते वक्त मन 'सर्वोदय जगत' के इस अंक के लिए मेरी कल्पना बिल्कुल अलग थी। किन्तु देश में घटित महत्त्वपूर्ण संवेदनशील घटनाओं के कारण इस अंक ने अनायास 'स्मृति-शेष' का आकार ग्रहण कर लिया है। देश के लोकप्रिय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी तथा पत्रकारिता के आदर्श पुरुष कुलदीप नैयर के देहावसान का मन पर पहले से ही गहरा असर था। किन्तु इस पंक्ति के लिखते समय गंगा की अविरलता के लिए सत्याग्रह पर बैठे प्रो. जी. डी. अग्रवाल उर्फ सानंद के देहावसान से 2013 की यादें ताजा हो गयी, जब हरिद्वार में ब्रह्मचारी निगमानंद की मौत के बाद सानंद ने 'गंगा के लिए जान भी दे दूंगा' की घोषणा की थी। वे गंगा को अपनी मां कहते थे और इसलिए वे मां की रक्षा के लिए अपने प्राण भी न्यौछावर करने को दृढ़-प्रतिज्ञ हुए।

ऐसा नहीं कि सानंद जैसे विद्वान जिन्होंने अपनी शिक्षा आईआईटी रूढ़की और कैलिफोर्निया वर्कले में प्राप्त की थी, सहज भावावेश में सत्याग्रह पर उतारू हुए होंगे।

ऐसे में कुछ सवाल अवश्य खड़े होते हैं कि अहिंसक सत्याग्रह के प्रति वह सरकार कैसे इतनी असंवेदनशील हो सकती है, जो गंगा-शुद्धि और गो-सुरक्षा के प्रति अपनी प्रतिबद्धता घोषित करती रही है?

ब्रह्मचारी निगमानंद के बाद सानंद को काल-कलवित होने से सरकार क्यों नहीं बचा पायी? आखिर सत्याग्रह में दोनों बलिदानों के लिए किसे जिम्मेवार माना जाय? क्या ऐसे अहिंसक सत्याग्रह, जिसके बल पर भारत को आजादी मिली, उसे विफल करने की कोशिशें हो रही हैं।

स्वाभाविक रूप में 'स्मृति-शेष' में हम ऐसे अवसर पर गांधी को भूल नहीं सकते। गांधी ने तो कहा था—''एक सच्चा सत्याग्रही पूरी दुनिया को बदल सकता है।'' यह सत्याग्रह किसी व्यक्ति विशेष के विरोध नहीं था। इसमें द्वेष या किसी अहंकार की गुंजाइश भी नहीं थी। इसलिए यह प्रश्न उठाना कि सत्याग्रह की शुद्धता इस सत्याग्रह में नहीं बरती गयी, यह बात बिल्कुल निराधार व निर्मूल है। इस सत्याग्रह का शुभारंभ तो जब केंद्र में कांग्रेस सरकार थी, निगमानंद द्वारा किया गया था और जिसकी निरंतरता सानंद ने अपने सत्याग्रह से बनायी। इसलिए इसमें कोई राजनीति भी नहीं दिखती, बल्कि गंगा के प्रति प्रेम और जनकल्याण की भावना दिखती है। फिर वर्तमान केन्द्र सरकार, जो गंगा प्रेम का राग अलाप रही है, उसका मकसद गांधी के अमोघ अस्त्र अहिंसक सत्याग्रह को विफल करना तो नहीं है? यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है। दूसरे, कहीं इस बात को सच करने की कोशिश तो नहीं हो रही, जिसे आजादी के बाद से एक विचारधारा के लोगों द्वारा प्रमाणित करने की कोशिश होती रही कि हमारी आजादी गांधी की अहिंसा के कारण नहीं मिली?

वायसराय माउंटबेटन और गांधी की पहली मुलाकात 31 मार्च 1947 को हुई और गांधी के सामने उनके कहे शब्द स्पष्ट थे—''ब्रिटिश नीति यह रही कि ताकत के सामने कभी न झुका जाय, परंतु आपकी अहिंसा जीत गयी। हमने निर्णय कर लिया है कि भारत के अहिंसक संग्राम के परिणाम स्वरूप हम भारत छोड़कर चले जायें।''

स्पष्टतः स्मृतिशेष में गांधी को हम सादर याद करते हैं, जिन्होंने अहिंसा से देश को आजाद कराया।

स्मृतिशेष के इस अंक में गांधी के बाद हम विनोबा से सीख ले सकते हैं। विनोबा का मानना है कि चुनाव के बदले में मनाव होना चाहिए और लोगों को सज्जनों के पास जाकर उन्हें मार्गदर्शन करने की जिम्मेवारी सौंपनी चाहिए।

स्मृतिशेष के अगले महापुरुष हैं लोकप्रिय प्रधानमंत्री अटलबिहारी वाजपेयी जिन्हें हिन्दुस्तान का स्वभाव व चरित्र सही रूप से मालूम था। आरएसएस में पले-बढ़े अटल जी जनता पार्टी को कांग्रेस का विकल्प बनाने में लग गये और उन्होंने स्पष्ट कहा कि आरएसएस को केवल सामाजिक काम करना चाहिए। जब प्रधानमंत्री बने तो स्थिति उनकी सोच के अनुसार बनी रही, जीवन में मूल्यों को बचाये रखा, जो हमारे लिए सीख है।

स्मृति शेष में हम पत्रकारिता जगत के शीर्ष कुलदीप नैयर को याद करते हैं और उनसे सीख लेते हैं कि सक्रिय और सार्थक पत्रकारिता कैसे की जाय, कैसे सत्ता को जनता के लिए चुनौती दी जाय।

इसी तरह हम पत्रकारिता जगत के प्रखर पत्रकार और संपादक कल्पेश याग्निक को याद करते हैं जो हमारे बीच नहीं रहे। उनके जीवन से सीख लेने की जरूरत है कि यदि समाज में उदाहरण बनना है तो जिन्दा रहना जरूरी है और जिन्दा रहने में साथियों की हौसला अफजाई का बड़ा महत्त्व है।

स्मृति शेष में हमारी स्मृतियों में हैं सुप्रसिद्ध कवि और पत्रकार विष्णु खरे, डॉ. गंगा प्रसाद अग्रवाल, शुभु पटवा आदि जो हमें छोड़ गये।

और अंततः याद करते हैं गांधी की धर्मपत्नी पूज्यनीया बा को जो जनमानस के लिए जगदम्बा बन गयीं। स्मृति शेष में सभी महान आत्मा को कोटिशः नमन, जिन्होंने इस देश में लोकतंत्र और मानवीय स्वतंत्रता को अक्षुण्ण रखने में बड़ा योगदान किया और जिनका हथियार अहिंसा और अहिंसक सत्याग्रह ही रहा।

–अशोक मोती

स्मृति-शेष

भारतीय लोकतंत्र

❑ गांधी

सर्वोच्च कोटि की स्वतंत्रता के साथ सर्वोच्च कोटि का अनुशासन और विनय होता है। अनुशासन और विनय से मिलने वाले स्वतंत्रता को कोई छीन नहीं सकता। संयमहीन स्वच्छंदता संस्कारहीनता की द्योतक है; उससे व्यक्ति की अपनी और पड़ोसियों की भी हानि होती है। कोई भी मनुष्य की बनायी हुई संस्था ऐसी नहीं है जिसमें खतरा न हो। संस्था जितनी बड़ी होगी, उसके दुरुपयोग की संभावनाएं भी उतनी ही बड़ी होगी। लोकतंत्र एक बड़ी संस्था है, इसलिए इसका दुरुपयोग भी बहुत हो सकता है। लेकिन उसका इलाज लोकतंत्र से बचना नहीं, बल्कि दुरुपयोग की संभावना को कम-से-कम करना है।

जनता की राय के अनुसार चलने वाला राज्य जनमत से आगे बढ़कर कोई काम नहीं कर सकता। यदि वह जनमत के खिलाफ जाए तो नष्ट हो जाये। अनुशासन और विवेकयुक्त जनतंत्र दुनिया की सबसे सुंदर वस्तु है। लेकिन राग-द्वेष, अज्ञान और अंध-विश्वास आदि दुर्गुणों से ग्रस्त जनतंत्र अराजकता के गड्ढे में गिरता है और अपना नाश खुद कर डालता है। मैंने अक्सर यह कहा है कि अमुक विचार रखने वाला कोई भी पक्ष यह दावा नहीं कर सकता है। हम सबसे भूलें होती हैं और हमें अक्सर अपने निर्णयों में परिवर्तन करने पड़ते हैं। *हमारे जैसा विशाल देश में ईमानदारी से विचार करने वाले सभी पक्षों को स्थान होना चाहिए। इसलिए हमारा अपने प्रति और दूसरों के प्रति कम-से-कम यह कर्तव्य तो है ही कि हम प्रतिपक्षी का दृष्टिकोण समझने की कोशिश करें। और यदि हम उसे स्वीकार न कर सकें तो भी जिस तरह हम यह चाहेंगे कि वह हमारे मत का आदर करे, उसी तरह हम भी उसके मत का आदर करें। यह चीज स्वस्थ सार्वजनिक जीवन की और स्वराज्य की योग्यता की अनिवार्य कसौटियों में से एक है। यदि हममें उदारता और सहिष्णुता नहीं है, तो हम अपने भेद कभी मित्रतापूर्वक नहीं सुलझा सकेंगे और फल यह होगा कि हमें तीसरे पक्ष को अपना पंच मानना पड़ेगा, यानी विदेशी अधीनता स्वीकार करनी पड़ेगी।*

जब राज्यसत्ता जनता के हाथ में आ जाती है, तब प्रजा की आजादी में होने वाले हस्तक्षेप की मात्रा कम-से-कम हो जाती है। दूसरे शब्दों में, जो राष्ट्र अपना काम राज्य के हस्तक्षेप के बिना ही शांतिपूर्वक और प्रभावपूर्ण ढंग से कर दिखाता है, उसे ही सच्चे अर्थों में लोकतंत्रात्मक कहा जा सकता है। जहां ऐसी स्थिति न हो वहां सरकार का बाहरी रूप लोकतंत्रात्मक भले हो, परंतु वह नाम के लिए ही लोकतंत्रात्मक है।

लोकतंत्र और हिंसा का मेल नहीं बैठ सकता। जो राज्य आज नाम मात्र के लिए लोकतंत्रात्मक हैं उन्हें तो स्पष्ट रूप से तानाशाही का हामी हो जाना चाहिए, या अगर उन्हें सचमुच लोकतंत्रात्मक बनना है तो उन्हें साहस के साथ अहिंसक बन जाना चाहिए। यह कहना बिलकुल अविचारपूर्ण है कि अहिंसा का पालन केवल व्यक्ति ही कर सकते हैं, और राष्ट्र—जो व्यक्तियों से बनते हैं—हरगिज नहीं।

प्रजातंत्र का सार ही यह है कि उसमें हर एक व्यक्ति उन विविध स्वार्थों का प्रतिनिधित्व करता है जिनसे राष्ट्र बनता है। यह सच है कि इसका यह मतलब नहीं कि विशेष स्वार्थों के विशेष प्रतिनिधित्व करने से रोक दिया जाए, लेकिन ऐसा प्रतिनिधित्व उसकी कसौटी नहीं है। यह उसकी अपूर्णता की एक निशानी है।

सच्ची लोकसत्ता या जनता का स्वराज्य कभी भी असत्यमय या हिंसक साधनों से नहीं आ सकता। कारण स्पष्ट और सीधा है। *यदि असत्यमय और हिंसक उपायों का प्रयोग किया गया, तो उसका स्वाभाविक परिणाम यह होगा कि सारा विरोध या तो विरोधियों को दबाकर या उनका नाश करके खत्म कर दिया जायेगा। ऐसी स्थिति में वैयक्तिक स्वतंत्रता की रक्षा नहीं हो सकती। वैयक्तिक स्वतंत्रता को प्रकट होने का पूरा अवकाश केवल विशुद्ध अहिंसा पर आधारित शासन में ही मिल सकता है।*

आजाद प्रजातांत्रिक भारत आक्रमण के खिलाफ पारस्परिक रक्षण और आर्थिक सहकार के लिए दूसरे आजाद देशों के साथ खुशी से सहयोग करेगा। वह आजादी और जनतंत्र पर आधारित ऐसी विश्व-व्यवस्था की स्थापना के लिए काम करेगा, जो मानव-जाति की प्रगति और विकास के लिए दुनिया के समूचे ज्ञान और उसकी समूची साधन-सम्पत्ति का उपयोग करेगी। *प्रजातंत्र का अर्थ मैं यह समझा हूं कि इस तंत्र में नीचे-से-नीचे और ऊंचे-से-ऊंचे आदमी को आगे बढ़ने का समान अवसर मिलना चाहिए।* लेकिन सिवा अहिंसा के ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। संसार में आज कोई भी देश ऐसा नहीं है जहां कमजोर के हक की रक्षा बतौर फर्ज के होता हो। *अगर गरीबों के लिए कुछ दिया भी जाता है, तो वह मेहरबानी के तौर पर किया जाता है।*

पश्चिम का आज प्रजातंत्र जरा हलके रंग का नाजी और फासिस्ट तंत्र ही है। ज्यादा-से-

ज्यादा प्रजातंत्र साम्राज्यवाद की नाजी और फासिस्ट चाल को ढंकने के लिए एक आडंबर है...हिन्दुस्तान सच्चा प्रजातंत्र गढ़ने का प्रयत्न कर रहा है, अर्थात ऐसा प्रजातंत्र जिसमें हिंसा के लिए कोई स्थान न होगा। हमारा हथियार सत्याग्रह है। उसका व्यक्त स्वरूप है चरखा, ग्रामोद्योग, उद्योग के जरिए प्राथमिक शिक्षा-प्रणाली, अस्पृश्यता-निवारण, मद्य-निषेध, अहिंसक तरीकों से मजदूरों का संगठन, जैसा कि अहमदाबाद में हो रहा है, और सांप्रदायिक ऐक्य। इस कार्यक्रम के लिए जनता को सामुदायिक रूप से प्रयत्न करना पड़ता है, और सामुदायिक रूप से जनता को शिक्षण भी मिल जाता है। इन प्रवृत्तियों को चलाने के लिए हमारे पास बड़े-बड़े संघ हैं, पर कार्यकर्ता पूरी तरह स्वेच्छा से इन कामों में आये हैं। उनके पीछे अगर कोई शक्ति है, तो वह उनकी अत्यन्त दीन-दुर्बलों की सेवा-भावना है।

जन्मजात लोकतंत्रवादी वह होता है, जो जन्म से ही अनुशासन का पालन करने वाला हो। लोकतंत्र स्वाभाविक रूप में उसी को प्राप्त होता है, जो साधारण रूप में अपने को मानवी तथा देवी सभी नियमों का स्वच्छतापूर्वक पालन करने का अभ्यस्त बना ले...जो लोग लोकतंत्र के इच्छुक हैं उन्हें चाहिए कि पहले वे लोकतंत्र की इस कसौटी पर अपने को परख लें। इसके अलावा, लोकतंत्रवादी को निःस्वार्थ भी होना चाहिए। उसे अपनी या अपने दल की दृष्टि से नहीं बल्कि एकमात्र लोकतंत्र की ही दृष्टि से सब-कुछ सोचना चाहिए। तभी मैं वह सविनय अवज्ञा का अधिकारी हो सकता है।

व्यक्तिगत स्वतंत्रता की मैं कदर करता हूं, लेकिन आपको यह हरगिज नहीं भूलना चाहिए कि मनुष्य मूलतः एक सामाजिक प्राणी ही है। सामाजिक प्रगति की आवश्यकताओं के अनुसार अपने व्यक्तित्व को ढालना सीखकर ही वह वर्तमान स्थिति तक पहुंचा है। अबाध व्यक्तिवाद वन्य पशुओं का नियम है। हमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता और सामाजिक संयम के बीच समन्वय करना सीखना है। समस्त समाज के हित के खातिर सामाजिक संयम के आगे स्वच्छतापूर्वक सिर झुकाने से व्यक्ति और समाज, जिसका कि वह एक सदस्य है, दोनों का ही कल्याण होता है।

जो व्यक्ति अपने कर्तव्य का उचित पालन करता है, उसे अधिकार अपने-आप मिल जाते हैं। सच तो यह है कि एकमात्र अपने कर्तव्य के पालन का अधिकार ही ऐसा अधिकार है, जिसके लिए ही मनुष्य को जीना चाहिए और मरना चाहिए। उसमें सब उचित अधिकारों का समावेश हो जाता है। बाकी सब तो अनधिकार अपहरण जैसा और उसमें हिंसा के बीज छिपे रहते हैं।

लोकशाही में हर आदमी को समाज की इच्छा यानी राज्य की इच्छा के मुताबिक चलना होता है और उसी मुताबिक अपनी इच्छाओं की हद बांधनी होती है। *स्टेट लोकशाही के द्वार और लोकशाही के लिए राज्य चलाती है। अगर हर आदमी कानून को अपने हाथ में ले तो स्टेट नहीं रह जायेगी; अराजकता हो जायेगी, यानी सामाजिक नियम या स्टेट की हस्ती मिट जायेगी। यह आजादी को मिटा देने वाला रास्ता है। इसलिए आपकी अपने गुस्से पर काबू पाना चाहिए और राज्य को न्याय पाने का मौका देना चाहिए।*

प्रजातंत्र में लोगों को चाहिए कि वह सरकार की कोई गलती देखें, तो उसकी तरफ उसका ध्यान खींचे और संतुष्ट हो जायें। अगर वे चाहें तो अपनी सरकार को हटा सकते हैं, मगर उसके खिलाफ आंदोलन करके उसके कामों में बाधा न डालें। हमारी सरकार जबरदस्त जल सेना और थल सेना रखने वाली कोई विदेशी सरकार तो है नहीं। उसका बल तो जनता ही है। *सच्ची लोकशाही केन्द्र में बैठे हुए बीस आदमी नहीं चला सकते। वह तो नीचे से हर एक गांव के लोगों द्वारा चलायी जानी चाहिए।*

भीड़ का राज्य : मैं खुद तो सरकार की नाराजी की उतनी परवाह नहीं करता जितनी भीड़ की नाराजी की। भीड़ की मनमानी राष्ट्रीय बीमारी का लक्षण है और इसलिए सरकार की नाराजगी की—जो कि अल्काय संघ तक ही सीमित होती है—तुलना में उससे निपटना ज्यादा मुश्किल है। ऐसी किसी सरकार को, जिसने अपने को शासन के लिए अयोग्य सिद्ध कर दिया हो, अपदस्थ करना आसान है, लेकिन किसी भीड़ में शामिल अनजाने आदमियों का पागलपन दूर करना ज्यादा कठिन है।

भीड़ को अनुशासन सिखाने से ज्यादा आसान और कुछ नहीं है। कारण सीधा है। भीड़ कोई काम बुद्धिपूर्वक नहीं करती, उसकी कोई पहले से सोची हुई योजना नहीं होती। भीड़ के लोग जो कुछ करते हैं सो आवेश में करते हैं। अपनी गलती के लिए पश्चात्ताप भी वे जल्दी करते हैं। मैं असहयोग का उपयोग लोकशाही का विकास करने के लिए कर रहा हूं।

हमें इन हजारों-लाखों लोगों को, जिनका हृदय सोने का है, जिन्हें देश से प्रेम है, जो सीखना चाहते हैं और यह इच्छा रखते हैं कि कोई उनका नेतृत्व करें, सही तालीम देने चाहिए। *केवल थोड़े से बुद्धिमान और निष्ठावान कार्यकर्ताओं की जरूरत है। वे मिल जायें तो सारे राष्ट्र को बुद्धिपूर्वक काम करने के लिए संगठित किया जा सकता है तथा भीड़ की अराजकता की जगह सही प्रजातंत्र का विकास किया जा सकता है।*

सरकार की ओर से या प्रजा की ओर से आतंकवाद चलाया जा रहा हो, तब लोकशाही की भावना की स्थापना करना असंभव है। और कुछ अंशों में सरकारी आतंकवाद की तुलना में प्रजाकीय आतंकवाद लोकशाही की भावना के प्रसार का ज्यादा बड़ा शत्रु है। कारण, सरकारी आतंकवाद से लोकशाही की भावना को बल मिलता है, जबकि प्रजाकीय आतंकवाद तो उसका हनन करता है। ❑

स्मृति-शेष

चुनाव से तनाव : मनाव से स्वराज्य

❑ विनोबा

चुनाव के बदले में मनाव होना चाहिए। मनाव अपने देश का तरीका है। चुनाव परदेश का तरीका है। बाबा को किसी ने नहीं चुना। बाबा खुद घूम रहा है, सेवा कर रहा है, तो लोग उसको मानते हैं। अगर लोग उसको नहीं मानते तो बाबा अपनी चीज उन पर नहीं लादता। उनको समझाता है।

देश में स्वराज्य आ गया। उसे ग्रामों तक पहुंचाना बाकी है। जब स्वराज्य ग्रामों में पहुंचेगा तब उसके आनंद का अनुभव सबको होगा। दिल्ली में चांद आया, लेकिन उतने से हम चंद्रोदय होगा, तभी मानेंगे कि चंद्रोदय हुआ। उसी तरह दिल्ली में स्वराज्य आया, लेकिन गांव-गांव में अभी तक नहीं आया। उसे गांवों तक ले जाने के लिए हमारी यात्रा है।

स्वराज्य दिया नहीं जाता, स्वराज्य लिया जाता है। यह नहीं हो सकता है कि हम आपको स्वराज्य दे दें। हमारे देने से आपको जो मिलेगा; वह स्वराज्य नहीं होगा। वह पर-राज्य होगा, वहां हमारी सत्ता होगी। *आपके लेने से जो होगा; वही स्वराज्य होगा। आपकी सामूहिक शक्ति से स्वराज्य स्थापित करिये, प्रेम से एक हो जाइए, तब ग्राम-स्वराज्य होगा।* फिर अपनी-अपनी शक्ति का, बुद्धि का, भक्ति का, जमीन का, सम्पत्ति का, जो भी आपके पास हो, उसका ग्राम-स्वराज्य बनता है और बनेगा। फिर ऊपर वाले उसको मान्य करें। बनाया आपने और ऊपर वालों ने मान्य किया। उसके बजाय ऊपर वालों ने दिया, तो वह स्वराज्य नहीं हुआ। उस पर से झगड़े पैदा होंगे। *ऊपर से सत्ता आयी तो उसको हथियाने के लिए हर कोई खड़ा होता है। फिर चुनाव होते हैं। चुनाव के साथ फिर तनाव होते हैं। इसलिए हम चुनाव की बात नहीं कहते।*

हम कहते हैं कि गांव के सज्जन सामने आयें। वे लोग 'हम आपके नेता हैं' कहकर सामने नहीं आयेंगे। जो सज्जन होते हैं, वे अपनी इच्छा लोगों पर नहीं लादते। वे प्रेम से व्यवहार करते हैं, भगवान का नाम लेते हैं। इसलिए गांव वालों का काम है कि ऐसे सज्जनों के पास जाएं और उनको मनाएं कि हमारे मार्ग-दर्शन की जिम्मेदारी आप उठायें। यह मनाव होना चाहिए। चुनाव के बदले में मनाव होना चाहिए। मनाव अपने देश का तरीका है। चुनाव परदेश का तरीका है। बाबा को किसी ने नहीं चुना। बाबा खुद घूम रहा है, सेवा कर रहा है, तो लोग उसको मानते हैं। अगर लोग उसको नहीं मानते तो बाबा अपनी चीज उन पर नहीं लादता। उनको समझाता है।

पुरानी बात है। मनु महाराज हम सबके पूर्वज हो गये। उनकी हम सब संतान हैं। मानव यानी मनु की संतान। मनु हमेशा एकांत में रहते थे। भगवद्‌भक्ति करते रहते, ध्यान करते। सुबह, शाम भगवत्—नाम लेते, चिन्तन, मनन और उपासना करते और हमेशा खोज करते रहते कि समाज का भला कैसे होगा? समाज के कानून ढूंढ़ते रहते। इधर लोगों में झगड़े पैदा हुए, तो लोग सोचने लगे कि झगड़ा ठीक करने के लिए हमारे बीच कोई आदमी होना चाहिए। वे मनु महाराज के पास गये और कहने लगे कि आप हमारे राजा बनिये। हमारी ग्रामसभा के अध्यक्ष बनिये। मनु महाराज बोले कि हमें अध्यक्ष बनाकर क्या करोगे? तुम ही अपना सोचो। लोगों ने कहा कि आप हमारा मार्गदर्शन कर सकते हैं। मनु महाराज ने कहा, ठीक है। लेकिन मेरी एक शर्त है। मैं बहुमत से चुनकर आना पसंद नहीं करूंगा। आप सब लोग एक राय से, एक आवाज से अगर मुझे बुलाओगे, तो मैं आऊंगा। और भी दूसरी एक शर्त है कि जो कानून बनेंगे, उससे भला होगा। किसी कानून से तकलीफ भी होगी तो दुःख भी पहुंचेगा। बहुतों का भला होगा, तो सुखी होंगे। लेकिन दुखी होंगे, उसका भी भला होगा, भला सबका होगा। लेकिन सुख सबको नहीं मिलेगा। तो सुख-दुख की जिम्मेवारी मेरी नहीं, वह आपकी है। यह कबूल करते हो तो मैं राजी हूं। लोगों ने कहा कि सुख-दुख की जिम्मेवारी हमारी होगी। आप मार्गदर्शन कीजियेगा। हम सबकी राय से आपको बुलाते हैं आप आइये। इस तरह मनु महाराज को उन्होंने मनाया। मनु महाराज पृथ्वी के प्रथम राजा बने।

इस तरह सज्जनों को मनाओ। प्रेम से भूमिहीनों को जमीन दो। उनको अपने परिवार में ले लो और ग्राम का एक परिवार बनाओ। इस प्रकार ग्राम-स्वराज्य बनाओ। चुनाव के आधार पर नहीं, मानव के आधार पर। चुनाव के आधार पर करोगे, तो तनाव होगा। यह ध्यान में रखकर ग्राम-स्वराज्य की स्थापना करिये। (छत्तीसगढ़ में विनोबा : पृ. 110-111)

एंगारी दुर्ग : 9.1.1964 ❑

स्मृति-शेष

'बा' ऐसी दृढ़ निश्चयी थीं

आजकल जेल जाना बहुत आसान बात हो गयी है। लेकिन पहले तो लोग जेल का नाम सुनकर डरते थे। उस समय किसी को यह कल्पना तो थी ही नहीं कि स्त्री जेल जा सकती है। लेकिन बापू तो जिनकी कल्पना भी नहीं होती, ऐसे बहुतेरे काम करते-कराते आये हैं। दक्षिण अफ्रीका में सन् 1913 में एक ऐसा कानून पास हुआ कि इसाई धर्म के अनुसार किये गये ब्याह के सिवा—जो विवाह-विभाग के अधिकारी के यहां दर्ज हुए हों—दूसरे सब ब्याहों को कानून में कोई जगह नहीं। इसका मतलब यह हुआ कि हिन्दू-मुसलमान-पारसी वगैरह धर्मों के अनुसार की गयी शादियां इस कानून की वजह से रद्द मानी गयी और इस कारण बहुत-सी विववाहिता 'हिन्दुस्तानी' स्त्रियों का दर्जा उनके पति की धर्मपत्नी का न रहकर 'रखेल' का माना गया। यह एक ऐसी स्थिति थी, जिसे स्त्री-पुरुष सह नहीं सकते थे। बापू ने इस कानून को रद्द करने के लिए वहां की सरकार के साथ बातचीत चलायी, लेकिन उसका कोई नतीजा नहीं निकला और बापू ने सत्याग्रह करने का निश्चय किया। 'दक्षिण अफ्रीका के सत्याग्रह का इतिहास' नामक पुस्तक में बापू लिखते हैं :

''मैं जानता था कि बहनों को जेल भेजने का काम बहुत खतरनाक था। फिनिक्स में रहने वाली अधिकतर बहनें मेरी रिश्तेदार थीं। वे सिर्फ मेरे लिहाज के कारण ही जेल जाने का विचार करें और फिर ऐन मौके पर घबराकर या जेल में जाने के बाद उकताकर माफी वगैरह मांग लें तो मुझे सदमा पहुंचेगा। साथ ही, इसकी वजह से लड़ाई के एकदम कमजोर पड़ जाने का डर भी था। मैंने तय किया था कि मैं अपनी पत्नी को तो हरगिज नहीं ललचाऊंगा। वह इंकार भी नहीं कर सकती थी और 'हां' कह दे तो उस 'हां' की भी कितनी कीमत जाये, सो मैं कह नहीं सकता था। ऐसे जोखिम के काम में स्त्री खुद होकर जो निश्चय करे, पुरुष को वही मान लेना चाहिए, इतना मैं समझता था। इसलिए मैंने उनके साथ कुछ भी बात न करने का इरादा रखा था। दूसरी बहनों से मैंने चर्चा की। वे जेल-यात्रा के लिए तैयार हुईं। उन्होंने मुझे विश्वास दिलाया कि वे हर तरह का दुख सहकर भी अपनी जेल-यात्रा पूरी करेंगी।'' मेरी पत्नी ने भी इन सब बातों का सार जान लिया और मुझसे कहा :

''मुझसे इस बात की चर्चा नहीं करते, इसका मुझे दुख है। मुझमें ऐसी क्या खामी है कि मैं जेल नहीं जा सकती? मुझे भी उसी रास्ते जाना है, जिस रास्ते जाने की सलाह आप इन बहनों को दे रहे हैं।''

मैंने कहा : ''मैं तुम्हें दुख पहुंचा ही नहीं सकता। इसमें अविश्वास की भी कोई बात नहीं। मुझे तो तुम्हारे जाने से खुशी ही होगी। लेकिन तुम मेरे कहने पर गयी हो, इसका तो आभास तक मुझे अच्छा नहीं लगेगा। ऐसे काम सबको अपनी-अपनी हिम्मत से ही करना चाहिए। मैं कहूं और मेरी बात रखने के लिए तुम सहज ही चली जाओ और बाद में अदालत के सामने खड़ी होते ही कांप उठो और हार जाओ या जेल के दुख से ऊब उठो तो इसे मैं अपना दोष तो नहीं मानूंगा, लेकिन सोचो कि मेरा क्या हाल होगा? मैं तुमको किस तरह रख सकूंगा और दुनिया के सामने किस तरह खड़ा रह सकूंगा? बस, इस भय के कारण ही मैंने तुम्हें ललचाया नहीं।

मुझे जवाब मिला : मैं हारकर छूट आऊं, तो मुझे मत रखना। मेरे बच्चे तक सह सकें, आप सब सहन कर सकें और अकेली मैं ही न सह सकूं, ऐसा आप सोचते कैसे हैं? मुझे इस लड़ाई में शामिल होना ही होगा।

मैंने जवाब दिया : तो मुझे तुमको शामिल करना ही होगा। मेरी शर्त तो तुम जानती ही हो। मेरे स्वभाव से भी तुम परिचित हो। अब भी विचार करना हो, तो फिर विचार कर लेना और भली-भांति सोचने के बाद तुम्हें यह लगे कि शामिल नहीं होना है तो समझना कि तुम इसके लिए आजाद हो। साथ ही, यह भी समझ लो कि निश्चय बदलने में अभी शरम की कोई बात नहीं है।

मुझे जवाब मिला : मुझे विचार वगैरह कुछ नहीं करना है। मेरा निश्चय ही है।''

'हमारी बा' (ले. वनमाला परीख, सुशीला नय्यर') से ❑

स्मरणांजलि

अटलजी से सीख सकते हैं हम

❑ कमल मोरारका

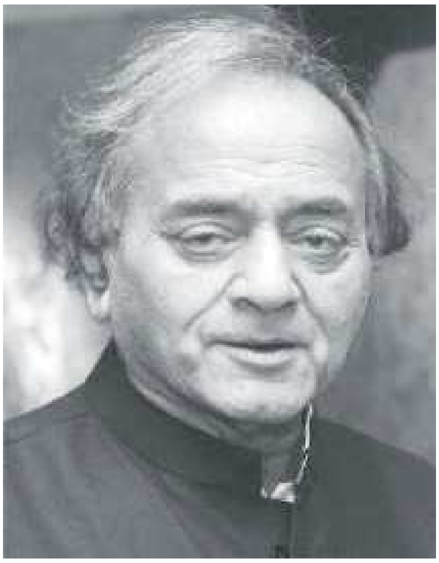

अटल बिहारी वाजपेयी का निधन पिछले दिनों की सबसे बड़ी घटना है। वैसे तो वे काफी अर्से से बीमार थे। हमलोगों के कुछ परिचित उनके संपर्क में थे। हम तो 2009 के बाद, एक तरह से उनकी राय और उनकी बुद्धिमत्ता से वंचित हो गये। लेकिन औपचारिक रूप से शरीर छोड़ना एक बड़ी घटना है। आम जनता को उनकी बीमारी का इतना पता नहीं था। अखबारों से अब लागों को समझ में आया होगा कि कितनी बड़ी हस्ती हमारे बीच से चली गयी। उनके 6 साल के प्रधानमंत्री के कार्यकाल में कारगिल युद्ध हुआ, न्यूक्लियर परिक्षण हुआ, अमेरिकन ने हम पर आर्थिक प्रतिबंध लगाये, लेकिन हम दबे नहीं, ये सब बातें सर्वविदित हैं। अभी हिन्दी-अंग्रेजी के अखबारों में, दक्षिण के अखबारों में जो टिप्पणियां आयीं वाजपेयी जी के व्यक्तित्व को लेकर, उससे सीखना जरूरी है। मैं समझता हूं कि आज जो माहौल है, कोई अखबार सरकार की आलोचना नहीं कर सकता। सेंशरशिप नहीं है, फिर भी डरे हुए हैं, मैं नहीं जानता। अटल जी के देहांत पर मौका मिल गया अखबारों को। फिर भी किसी ने नहीं लिखा है कि अटल जी के रिश्ते विपक्ष से भी अच्छे थे, जो मोदी के नहीं हैं। क्योंकि मोदी के खिलाफ लिखने की ताकत नहीं है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता थी उनकी उदारता, विपक्ष से खुला दिमाग रखकर बात करना, विपक्ष के सदस्यों से दोस्ती रखना, हर तरह की राय सुनने की ताकत रखना। देश का मिजाज क्या है? अटल जी का व्यक्तित्व ही देश का मिजाज है। पार्लियामेंट तो एक औपचारिक जगह है सत्ता और विपक्ष के लिए। समाज में हमलोग रहते हैं, तो दो पड़ोसी की अलग अलग राय होती है।

हिन्दुस्तान का चरित्र क्या है? हिन्दुस्तान का स्वभाव क्या है? उसका प्रतिबिम्ब अटल जी के व्यक्तित्व में था। चाहे जितना बड़ा नेता हो, चर्चिल हों, रुजवेल्ट हों, महात्मा गांधी हों, कोई भी नेता जिस

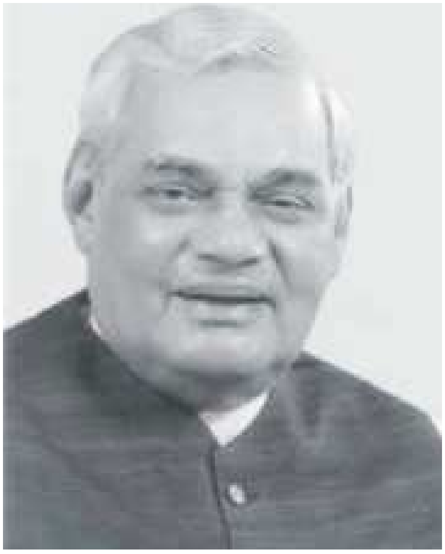

देश में काम करता है, उस देश को मात्र 1 से 5 प्रतिशत बदल सकता है। 95 प्रतिशत तो वह नेता उस देश को अपनाता है, इसलिए इतना बड़ा नेता बन जाता है। महात्मा गांधी अफ्रीका में आये, तो गोपाल कृष्ण गोखले ने कहा कि मोहनदास तुमको अगर भारत में काम करना है, तो पहले भारत का दौरा करो और ट्रेन से करो। उसके बाद सोचो क्या करना है। गांधी जी निकल पड़े ट्रेन के थर्ड क्लास के डब्बे में बैठकर पूरा भारत भ्रमण करने, तब समझ में आया कि ये विचित्र देश है। उनको समझ में आया कि भारत की कमजोरी और ताकत क्या है। भारत की कमजोरी ये थी कि कोई आदमी ब्रिटिश सरकार से लाठी-बंदूक लेकर लड़ने को तैयार नहीं था। ये हिन्दुस्तानियों का स्वभाव नहीं है। जिसे राज करना है करे, जनता अपने में मगन रहती है। ताकत क्या है? ताकत ये है कि आधी रोटी खाकर जी लेंगे, भूखे रहकर जी लेंगे। लेकिन एक संकल्प कर लिया, तो छोड़ेंगे नहीं। इस ताकत को पहचान कर गांधी जी ने सत्याग्रह को हथियार बना लिया। जो शब्द शब्दकोष में भी नहीं था, उसे हथियार बना लिया। उन्होंने कहा कि मैं सत्य के सहारे लड़ूंगा, उसके लिए मरने को तैयार हूं। गांधी जी खुद अनशन करते थे और उस अनशन को ताकत बनाकर अंग्रेजों को यहां से विदा कर दिया। उससे पहले भी मुगलों ने इतने साल राज किये, पर सबको मुसलमान नहीं बना पाये। हिन्दुस्तानी अजीब आदमी हैं। हां-हां करेंगे, पर करेंगे अपने मन की, इसीलिए यहां के ओपिनियन पोल कभी सही नहीं होते हैं क्योंकि जब जाते हैं पूछने तो वो पूछने वाले का मुड देखकर बोलते हैं कि इस आदमी को वोट देंगे। आज मोदी के खिलाफ नहीं बोलेंगे। लोग बोलेंगे कि मोदी को वोट देंगे पर देंगे नहीं। ये हिन्दुस्तान है। इस बात को जो समझता है, स्टेट्समैन बन जाता है। जैसे, जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, मौलाना आजाद, इंदिरा गांधी या अटल बिहारी वाजपेयी।

अटल बिहारी वाजपेयी ब्राह्मण थे, सुसंस्कृत थे। आरएसएस में पले बढ़े थे।

राजनीति में आते ही वे समझ गये कि हमलोग जो बात करते हैं कि सवा पांच बजे शाखा लगाकर पूरे हिन्दुस्तान से ऐसा करवा लेंगे, तो लोग इसके लिए तैयार नहीं हैं। 1977 में जब अचानक सरकार बन गयी, तो वे विदेश मंत्री बन गये। वे पहले आदमी थे यह समझने वाले कि जनता पार्टी कांग्रेस का विकल्प बन सकती है। उन्होंने लिखा कि आरएसएस को केवल सामाजिक काम करना चाहिए, जनता पार्टी को कंट्रोल करने की कोशिश मत करिए। आरएसएस मानी नहीं। सरकार गिर गयी। आरएसएस वाले इन्हें जनता पार्टी से ले जाकर भारतीय जनता पार्टी बनवा ली। भाजपा नहीं बनाते, तो जनता पार्टी बहुत जल्दी वापस पावर में आ गयी होती। 20 साल बाद, 1998 में ये पावर में आये। खैर, यह सब इतिहास है। समझने की बात यह है कि देश का मिजाज जो समझ सकता है, वही नेता बन सकता है। नरेन्द्र मोदी और अमित शाह देश का मिजाज समझे नहीं, मौका गंवा दिया। 2014 में जिस सद्भावना से वे पावर में आये थे, उसका फायदा नहीं उठा पाये। इनमें वो क्षमता ही नहीं है। क्यों? क्योंकि ये देश को अपने सांचे में ढालना चाहते हैं। गो मांस मत खाइये, मांस मत खाइये। आरएसएस बोल रही है कि बकरीद के दिन केक काटिये, बकरा मत काटिये। किसने कहा कि हिन्दू शाकाहारी हैं। जैन हैं शाकाहारी, हिन्दू शाकाहारी नहीं हैं। 90 प्रतिशत से ज्यादा हिन्दू मांसाहारी हैं। मैं मांसाहार की वकालत नहीं कर रहा हूं, क्योंकि मैं शाकाहारी हूं। लेकिन खान-पान की आदत दूसरों पर थोपना, रहन-सहन की आदत दूसरों पर थोपना, अपनी सोच दूसरों पर थोपना गलत है। यह हिन्दुस्तान है ही नहीं।

हिन्दुस्तान को समझने के लिए बुद्धि का विकास बहुत जरूरी है। मोदी और अमित शाह समझते हैं कि हमने जो बोल दिया, वही होना चाहिए। फिर तो हम अफ्रिकन देश बन जायेंगे। बनाना रिपब्लिक बन जायेंगे। भारत में भाजपा का एमएलए भी गिरफ्तार होते हैं। क्यों? क्योंकि जो इंस्पेक्टर है, उसे तथ्यों को देखना पड़ता है। फिर कोर्ट है। कंस्टीट्यूशन इतना सुंदर बनाया है हमारे पूर्वजों ने। आर्टिकल-226 के तहत एक अकेला आदमी भी हाईकोर्ट के दरवाजे पर दस्तक दे सकता है कि मेरे साथ अन्याय हो रहा है और हाईकोर्ट सुनती है उसकी बात।

अटल जी के देहांत से जो सबसे बड़ी सीख मिली है, वह यह कि हम अपने मूल्यों को न भूलें। देश को यही मूल्य बचायेंगे। लेकिन ये सब भाजपा को भी सीखना चाहिए। आरएसएस के लिए सीखना जरूरी है। आरएसएस को चाहिए कि मोदी और अमित शाह को नागपुर बुलायें और कहें कि देखो भई हमलोग के रत्न अटल जी, लेकिन तुम लोग क्या कर रहे हो? तुम लोग कांग्रेस की नकल कर रहे हो। आज अगर कांग्रेस को कोई बढ़ावा दे रहा है, कांग्रेस की संस्कृति को बढ़ावा दे रहा है, तो वो हैं— अमित शाह और नरेन्द्र मोदी। नरेन्द्र मोदी ने कांग्रेस मुक्त भारत की बात की थी। फिर उन्होंने कहा था कि मेरा मतलब कांग्रेस पार्टी से नहीं है, बल्कि कांग्रेस ने जो वातावरण फैला रखा है, मैं उसे हटाना चाहता हूं। विडम्बना यह है कि उसी को इन्होंने सुदृढ़ कर दिया। इन्होंने कांग्रेस को बता दिया कि तुम्हारा ही तरीका सही नहीं था। तुम्हारा ही सही था और उसको हम और तेजी से बढ़ायेंगे। साढ़े चार साल बीत गये। अब कुछ हो भी नहीं सकता। अटल जी का देहांत एक मौका है, एक अवसर है कि आज भी अपनी छवि बदल लें मोदी जी। चुनाव परिणाम वही होगा जो होना है। लेकिन अटल जी से बहुत कुछ सीख सकते हैं हम। ❑

बंग्लादेश में गांधी की सबसे ऊंची मूर्ति लगी

गांधी की जयंती 2 अक्टूबर को गांधीयन इंस्टीट्यूट, नोआखली, जोगइ के गांधी मेमोरियल के आश्रम में बंग्लादेश में भारत के उप उच्चायुक्त अनिन्दो बनर्जी तथा नोआखली विज्ञान एवं तकनीकी विश्वविद्यालय के कुलपति डॉ. वहीउद्दीन तथा अन्य विशिष्ट जनों ने सहित भारत से गये शांति, सम्प्रीति मैत्री यात्रियों की उपस्थिति में गांधी की मूर्ति का अनावरण किया।

इसके पूर्व गांधी आश्रम के परिसर में सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष महादेव विद्रोही, आशा बोथरा, मंत्री चंदनपाल, डॉ. रामजी सिंह, डॉ. अविदा वेगम, डॉ. सोमनाथ रोड़, डॉ. मानवेन्द्र मंडल, सर्वोदय जगत के संपादक अशोक मोती एवं एल. नरसिंहय्या आदि ने मिलकर वृक्षारोपण किया। इस अवसर पर वयोवृद्ध गांधीवादी पद्मश्री एवं कई सम्मानों से सम्मानित झरनाधारा चौधरी, सर्व सेवा संघ के महामंत्री शेख हुसैन, मंत्री रमेश पंकज, शुभा 'प्रेम', उपस्थिति थे।

उल्लेखनीय है कि 2 अक्टूबर गांधी जयंती के अवसर पर प्रभातफेरी आयोजित की गयी।

कार्यक्रम के दौरान सर्व सेवा संघ के अध्यक्ष भाई महादेव विद्रोही, डॉ. रामजी सिंह तथा चंदनपाल ने उपस्थित जनों को संबोधित किया।

ज्ञातव्य हो कि सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) द्वारा 26 सितंबर से 3 अक्टूबर 2018 तक की बंग्लादेश यात्रा का आयोजन किया गया था, जिसमें 19 गांधीजन शामिल थे। **–स. ज. प्रतिनिधि**

स्मृति-शेष

कुलदीप नैयर हमारे जमाने के कबीर थे

❑ संतोष भारतीय

श्री कुलदीप नैयर इस दुनिया को अलविदा कह गये। बहुत सारे लोगों ने कुलदीप नैयर को याद किया और उन्हें भरी आंखों से विदा किया। कुलदीप नैयर का जाना इतिहास के एक ऐसे अध्याय का बंद होना है, जो अध्याय जीवन के संघर्ष को, विचारधारा को, जनाभिमुख पत्रकारिता को और पत्रकारिता की शान को जीवित देखने वाला अध्याय रहा है। कुलदीप नैयर अपने बलबूते संघर्ष करते हुए पूरे हिन्दुस्तान में पत्रकारिता के शीर्ष पर पहुंचे और शीर्ष पर पहुंचने के बाद भी लगातार उन लोगों के साथ जुड़े रहे, जिन्होंने उन्हें शीर्ष पर पहुंचाया है। यह गुण आज के दौर में कहीं दिखायी नहीं देता। इसीलिए कुलदीप नैयर का जाना, शान से जीते हुए एक ऐसे अजीम-ओ-शान शख्स का जाना है, जिसने जिन्दगी में बहुत सारे लोगों को बनाया, बहुत सारे लोगों को प्रेरणा दी और पत्रकारिता की दुनिया में हर एक के दिल पर अपनी अमिट छाप छोड़ी।

पाकिस्तान से शरणार्थी बनकर आया हुआ परिवार, उस परिवार का एक युवक उर्दू अखबार से अपनी जिन्दगी शुरू करता है और अपनी जवानी के आखिरी पड़ाव में वो देश के सबसे बड़े अंग्रेजी अखबार का संपादक बन जाता है। इस बीच, उसने बहुत सारे अनुभव किये। लेकिन जब वे संपादक बने, तो उन्होंने हिम्मत की, ऐसी कहानी लिखी, जिस कहानी की मिसाल आज कहीं नहीं मिलती। आपातकाल लगा। 1975 का साल था और कुलदीप नैयर ने आपातकाल के खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया। अखबार में संपादकीय पृष्ठ खाली छोड़ दिये और अपने साथी अजीत भट्टाचार्य जी और प्रभाष जोशी को भी ऐसा करने के लिए प्रेरित किया। कुलदीप नैयर के लेख उस समय की सरकार की आंखों में हमेशा चुभते थे। इसीलिए जब सरकार ने स्वतंत्र विचार वाले व्यक्तियों को जेल के अंदर डालने की सूची बनायी, उसमें कुलदीप नैयर का नाम सबसे ऊपर था। कुलदीप नैयर देश के उन चुनिंदा पत्रकारों में थे, जिन्हें सरकार ने 19 महीने के लिए जेल में डाल दिया था। कुलदीप नैयर चाहते, तो बहुतों की तरह एक सामान्य सा माफीनामा लिखकर घर आ सकते थे। लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। कुलदीप नैयर ने पत्रकारिता को सामान्य जन की चेतना झंझोड़ने का जरिया बनाया। उनके लेख जितने हृदय को उद्वेलित करते थे, उससे ज्यादा उनके संपादकीय नेतृत्व में निकलने वाली खबरों का चयन लोगों को रास्ता दिखाता था। कुलदीप नैयर शानदार संपादक थे।

कुलदीप नैयर ने पत्रकारिता में एक नया काम शुरू किया और वो काम था सार्थक पत्रकारिता करना, सक्रिय पत्रकारिता करना। कुलदीप नैयर सक्रिय पत्रकारिता के बाद भी घर में बैठकर कॉलम लिखत थे। लेकिन वे समाज के ज्वलंत मुद्दों से कभी नहीं हटे। उन्होंने उन मुद्दों का समर्थन सिर्फ लिखकर नहीं किया, बल्कि उन्होंने लोगों की आत्मा भी जगाने का काम किया। कुलदीप नैयर साहब देश में हर जगह जाते थे और सामाजिक-राजनीतिक चुनौतियों, आर्थिक सवालों और गिरती हुई राजनीतिक दशा पर लोगों के साथ बेबाक संवाद करते थे। ऐसे संपादकों के नाम तलाशें तो बहुत कम संपादक नजर आते हैं, जो पाठकों से अपनी लेखनी के जरिए भी संवाद करते हों। कुलदीप नैयर साहब का जीवन उम्र के खिलाफ खड़े व्यक्ति का जीवन है। उन्होंने कभी उम्र को और अपनी बीमारी को अपने संकल्प के आगे खड़ा नहीं रहने दिया।

कुलदीप नैयर साहब 95 साल तक देश के सामान्य जन की जीजिविषा को जगाने की कोशिश करते रहे। वह सफर, जो 20 साल की उम्र में शुरू हुआ था, 22 और 23 अगस्त, 2018 की मध्यरात्रि में जाकर रुका। जीवन के आखिरी क्षणों तक कुलदीप नैयर साहब सक्रिय रहे। उन्होंने भारत-पाकिस्तान के रिश्तों को सामान्य करने के लिए भारत-पाकिस्तान की सीमा पर लगभग हर साल एक समारोह का आयोजन किया। इसमें वे स्वयं जाते थे और दोनों देशों में शांति हो, इसके लिए मोमबत्तियां जलाते थे। पाकिस्तान की तरफ से उनके दोस्त आते थे और दोनों शांति के लिए, जनता में संवाद हो इसके लिए, जनजागरण करने का संकल्प लेते थे। अब वो संकल्प उनके बाद कौन पूरा करेगा, अभी कहा नहीं जा सकता। एशिया के पत्रकारों का सम्मेलन हो या विदेशों में पत्रकारिता को लेकर बहस हो या चौथी दुनिया जैसे अखबार की रोजा इफ्तार पार्टी हो, कुलदीप नैयर साहब सब जगह जाते थे और अंत तक बैठते थे। मुझे याद है, जब चौथी दुनिया का उर्दू संस्करण शुरू हुआ, आशीर्वाद देने कुलदीप नैयर साहब सबसे पहले आये और पूरे समारोह में आखिर तक बैठै। इसके बाद हर साल उर्दू चौथी दुनिया की तरफ से रोजा इफ्तार का आयोजन हुआ और उसमें कुलदीप साहब आते रहे। पिछले

आयोजन में वे बहुत डगमगाते कदमों से आये, लेकिन आये और बैठे। वे कुलदीप नैयर साहब का उन लोगों के प्रति स्नेह था, जो लोग सही पत्रकारिता करने की कोशिश कर रहे हैं। मैं इस मामले में भाग्यशाली हूं कि वे जब भी मुझे मिले, मैंने उनके पैर छुए और उनका हाथ या तो मेरी पीठ पर या मेरे सर पर गया। अब उस थरथराते लेकिन मजबूत हाथ का कंपन मुझे जीवन में कभी महसूस करने का अवसर नहीं मिलेगा। लेकिन मैं कुलदीप नैयर साहब की मौत का शोक नहीं मना रहा हूं। मैं कुलदीप नैयर साहब के इस जीवन यात्रा को एक ऐसे रास्ते पर देखता हूं, जिस पर चलने की हिम्मत कम से कम वो लोग नहीं कर पायेंगे, जिन्होंने पत्रकारिता को भ्रष्ट कर दिया। कुलदीप नैयर साहब का सपना था कि भारत और पाकिस्तान के पत्रकार आपस में संवाद करें। भारत और पाकिस्तान की जनता आपस में संवाद करे। इसके लिए उन्होंने अपनी पूरी जिन्दगी कोशिश की। उन्होंने कभी किसी को दुश्मन नहीं माना। वे हर एक में खूबी तलाशते थे और यही कुलदीप नैयर साहब की खासियत थी। आने वाली पीढ़ी कुलदीप नैयार साहब को अगर पढ़ेगी, तो समझ पायेगी कि एक पत्रकार के मायने क्या होते हैं। एक पत्रकार का संघर्ष क्या होता है और ऐसा पत्रकार जो कभी सत्ता से समझौता नहीं करता है। वो सत्ता चाहे इंदिरा गांधी की रही हो या नरेन्द्र मोदी की, उन्होंने सत्ता प्रतिष्ठान को हमेशा चुनौती दी। चुनौती अपने लिए नहीं दी। वो चुनौती इस देश की जनता के लिए दी। उन्होंने जैसी पत्रकारिता की, वैसी पत्रकारिता करने का दमखम बहुत कम लोगों में है और तब संत कबीर की दो लाइनें याद आती हैं—कबीरा खड़ा बाजार में लिए लुकाठी हाथ, जो घर फूंके आपना चले हमारे साथ। कुलदीप नैयर साहब हमारे जमाने के कबीर थे। आज हमारा कबीर हमसे दूर चला गया। उन्हें विनम्र श्रद्धांजलि। ❑

पत्रकारिता के शीर्ष कुलदीप नैयर

❑ **नीरजा चौधरी**

भारतीय पत्रकारिता के बड़े आधार-स्तंभों में से एक कुलदीप नैयर अब हमारे बीच नहीं रहे। मैं उन्हें भारतीय पत्रकारिता जगत का लिजेंड मानती हूं। मैं उनके काम करने के तरीके और उनकी पत्रकारिता को जितना नजदीक से जानती हूं, कह सकती हूं कि आज तकनीकी के इस दौर में भी कोई पत्रकार वैसा काम नहीं कर सकता। जिस तरीके से वे फैक्ट फाइंडिंग करते थे, उसमें कहीं भी कोई एकपक्षीय तथ्य खोजे नहीं मिलता था। पॉलिटिकल रिपोर्टिंग में उनका कोई सानी नहीं था और न ही उनके जैसी स्पष्टवादिता ही किसी में थी।

पॉलिटिकल रिपोर्टिंग करते हुए वे नेताओं से बात तो करते थे, लेकिन किसी एक नेता की बातचीत को ही खबर का आखिरी छोर नहीं मान बैठते थे, बल्कि उसका दूसरा पक्ष जब तक जान नहीं लेते थे या जब तक उसकी पुष्टि नहीं कर लेते थे, तब तक उस स्टोरी को पूरा नहीं करते थे। हर एक से प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष, मगर सीधी बात करते थे। यही वजह है कि कोई नेता या राजनीति से जुड़ा व्यक्ति उनसे बात करने में जरा भी हिचकिचाता नहीं था, क्योंकि सभी जानते थे कि कुलदीप जी कभी भी इनपुट के साथ न तो पक्षपाती हो सकते थे और न ही बेवजह सिनिकल (निंदक) हो सकते थे। यही बात उनकी पत्रकारिता और उनके काम की जान थी। पॉलिटिकल रिपोर्टिंग करते हुए हर एक दल के नेताओं से व्यक्तिगत स्तर पर अच्छे संबंध होना इस बात का प्रमाण है कि वे पत्रकारीय नैतिकता के कितने धनी व्यक्ति थे।

तथ्यपरकता, सच्चाई, लकीर का फकीर न होना, किसी भी स्टोरी में अपनी लाइन नहीं लेना, जो है उसे ही लिखना है, ये सब चीजें उनकी पत्रकारिता में शामिल थीं। लेकिन, अफसोस की बात है कि आजकल के ज्यादातर पत्रकारों में यह सब देखने तक को नहीं मिलता। कुलदीप नैयर सरकार के भीतर से फैक्ट फाइंडिंग खूब करते थे और नेता भी उन पर खूब विश्वास करते थे और स्पष्टता बताते थे। उस दौर के सभी नेता उनकी इस खूबी को जानते थे कि कुलदीप जी को 'ना काहू से दोस्ती ना काहू से बैर' की राह पर चलते हुए स्टोरी की सच्चाई और गरिमा बरकरार रखने की कला में महारत हासिल है। भारतीय पत्रकारिता और पत्रकारीय संस्थान यूनएनआई को बनाने-संवारने में उनका बड़ा योगदान माना जा सकता है।

मेरे जैसे बहुत से लोग उनसे इसी बात की प्रेरणा लेते थे। मैं उनकी किताब 'बिटविन दि लाइंस' से बहुत प्रभावित थी। मैं हमेशा से यह चाहती थी कि मैं कुलदीप नैयर बन जाऊं। मैं ही क्या, उस दौर के कई और भी थे जो ऐसा सोचते थे। लेकिन, ऐसा कहां मुमकिन है कि किसी और की तरह कोई दूसरा व्यक्ति बन पाये। शायद इसलिए भी उनके जाने से आज भारतीय पत्रकारिता जगत में एक बड़े खालीपन को महसूस किया जा सकता है। पॉलिटिकल रिपोर्टिंग करते हुए कैसे अपने निजी विचारों में एकदम स्पष्ट होना चाहिए, इस बात की सबसे अच्छी मिसाल अगर कोई है, तो वे कुलदीप नैयर ही हैं। इसलिए मैं उन्हें भारतीय पत्रकारिता→

श्रद्धांजलि

सरहद के आर-पार अमन का इंतजार

❑ कुलदीप नैयर

कुलदीप नैयर साहब पत्रकारिता जगत के सलाका पुरुष थे, जैसा बनने की इच्छा किसी भी पत्रकार की हो सकती है। इन्हें मैंने पहली बार पटना विश्वविद्यालय के छात्र यूनियन की सभा में भाषण देते देखा था। बिहार आंदोलन और जेपी के सचिवालय में कार्यरत रहते कई अवसरों पर इनसे विमर्श की जरूरतें हुईं। 'दिनमान' बोधगया महंथ और वहां के भूमि संघर्ष पर संबंधी मेरी रिपोर्ट पर उनकी बातचीत दिनमान के संपादक रघुवीर सहाय से हुई थी। वे 74 आंदोलन के साथ ही बोधगया के भूमि-संघर्ष को मार्गदर्शन देते रहे।

स्मृति शेष के रूप में उनका यह आलेख प्रस्तुत है। 'सर्वोदय जगत' की विनम्र श्रद्धांजलि! –सं.

यह 12 अगस्त, 1947 यानी आजादी के तीन दिन पहले की बात है। डॉक्टर के प्रैक्टिस करने वाले मेरे पिता ने हम तीन भाइयों को बुलाया और पूछा कि हमारा कार्यक्रम क्या है? मैंने कहा कि मैं उसी तरह पाकिस्तान रुकना चाहता हूं जिस तरह भारत में मुसलमान रुक गये हैं। मेरा बड़ा भाई, जो अमृतसर में मेडिकल की पढ़ाई कर रहा था, ने बीच में ही दखल देकर कहा कि पश्चिमी पंजाब में भी मुसलमान हिन्दुओं को उसी तरह मकान खाली करने के लिए कहेंगे जिस तरह पूर्वी पंजाब में रहने वालों को चले जाने के लिए कहा जायेगा। मैंने कहा कि यह कैसे संभव है? अगर हिन्दू जाने के लिए तैयार नहीं हुए तो? उसने कहा कि हमें जबरदस्ती निकाल दिया जायेगा।

ठीक वैसा ही हुआ। आजादी के दो दिन बाद 17 अगस्त को कुछ मुस्लिम सज्जन आये और उन्होंने हमसे मकान छोड़ने का आग्रह किया। उनमें से एक से मैंने पूछा कि हम कहां जायें? उसने जालंधर के अपने घर की चाबी दी और कहा कि उसका मकान पूरी तरह सुसज्जित है और उसमें तुरंत रहना शुरू किया जा सकता है। हमने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया, लेकिन उनके जाने के बाद हम लोग भविष्य के बारे में विचार करने के लिए खाने की मेज के चारों ओर बैठे। मैंने कहा कि मैं यहीं रुकना चाह रहा हूं, लेकिन बाकी सबने कहा कि वे अमृतसर जायेंगे और जब गड़बड़ी खत्म हो जायेगी वापस लौट आयेंगे। हम सबकी राय थी कि हालात कितने भी निराशाजनक क्यों न हों, वे फिर से सामान्य हो जायेंगे—ज्यादा से ज्यादा एक महीने में। घर में ताला लगाते वक्त मेरी मां ने कहा कि उसे अजीब महसूस हो रहा है। लगता है हम वापस यहां नहीं आने वाले। मेरे बड़े भाई ने उनसे सहमति जाहिर की। आखिरकार मैंने भी यह कहे हुए कि हम दरियागंज, दिल्ली में मौसा के घर मिलेंगे, कैनवास के एक नीले थैले में एक पतलून और एक कमीज रख ली। मेरी मां ने मुझे दिल्ली पहुंचने तक अपना खर्च चलाने के लिए 120 रुपये

→जगत का लिजेंड मानती हूं।

कुलदीप नैयर से पहली बार मैं तब मिली थी, जब वे स्टेट्समैन के रेजिडेंट एडिटर हुआ करते थे। राजमोहन गांधी ने मुझे और कुछ अन्य पत्रकारों को कुलदीप जी से मिलवाया था। उस दौरान उनसे हुई बातचीत मुझे याद है। उनसे बातचीत में, उनके बताने-समझाने में मैंने महसूस किया कि अपने देश को लेकर वे कितना गंभीर थे। बातचीत में कभी-कभार वे बंटवारे का जिक्र भी करते थे और उस राजनीतिक घटना को मौजूदा हालत के परिप्रेक्ष्य में जोड़कर बताते थे। लेकिन कहीं भी किसी और के प्रति वे सिनिकल नहीं होते थे। इससे समझ में आता था कि देश और नागरिकों के प्रति उनका कितना गहरा लगाव था।

उनके व्यक्तित्व का एक शानदार पहलू यह है कि उनमें माफ करने का गुण गहरे तक था। जबकि किसी अखबार का संपादक होना एक अलग तरह के रुतबे में रहना और दंभ का पालन भी हो सकता है, जो निचले पदों पर बैठे व्यक्तियों के लिए कई तरह की परेशानियों का कारण है। मेरी बदकिस्मती यह है कि जहां-जहां, जिस भी अखबार में काम करने गयी, मेरे ज्वाइन करने से पहले ही वे उसे छोड़ चुके होते थे। फिर भी उनका सान्निध्य मिलता रहा और हम उनसे सीखते रहे।

उनकी पत्रकारिता और व्यक्तिगत जीवन के अलावा ऐसे बहुत से आयाम हैं, जिन पर चर्चा करने के लिए एक लंबा वक्त चाहिए। लेकिन हां, इतना तो जरूर कहूंगी कि मानवाधिकार, नागरिक अधिकार संरक्षण, आपातकाल और कश्मीर में लोगों के हक को लेकर उनका बड़ा काम है। तब वे न तो पत्रकार रह जाते थे, न ही कोई व्यक्तित्व, बल्कि बिना किसी खांचे से बंधा एक बेहतर इंसान होते थे और इंसानियत की नजर से ही मानवाधिकारों पर लिखते-बोलते थे। भारत-पाकिस्तान के रिश्तों को वे बहुत ही गंभीरता से देखते थे। उनका मानना था कि हम अपना पड़ोसी नहीं बदल सकते, इसलिए हमें एक-दूसरे के साथ घुल-मिलकर ही रहना चाहिए। इसी में देशों की कामयाबी है। नहीं तो बंटवारे का दर्द हमेशा गहरे तक सालता रहेगा। यही वजह है कि पड़ोसी देशों के नेताओं से भी उनके अच्छे रिश्ते थे। पाकिस्तान में उन्हें बहुत सम्मान की नजर से देखा जाता है। उन्हें विनम्र नमन! ❑

दिये। मेरे पिता ने मेरी यात्रा को आसान बना दिया। उन्होंने एक ब्रिगेडियर से हम तीन भाइयों को सरहद पार ले जाने के लिए कहा था। उसने कहा कि उसकी जोंगा जीप में जगह नहीं है और वह सिर्फ एक आदमी को ले जाने के लिए कहा था। उसने कहा कि उसकी जोंगा जीप में जगह नहीं है और वह सिर्फ एक आदमी को ले जा सकता है। दूसरे दिन सुबह मुझे उसकी जीप में ठेल दिया गया। मैं अपने आंसू रोक नहीं पाया। मुझे संदेह हो रहा था हम दोबारा नहीं मिल पायेंगे।

सियालकोट में संबरावल के बीच की यात्रा सामान्य थी, लेकिन वहां से लोगों का कारवां दो विपरीत दिशाओं में जाता दिखायी दे रहा था—हिन्दू भारत की ओर जा रहे थे और मुसलमान पाकिस्तान की ओर आ रहे थे। अचानक हमारी जीप रुक गयी। एक बूढ़ा सिख रास्ते के बीच में खड़ा हो गया था। उसने अपने पोते को भारत ले जाने की विनती की। मैंने विनम्रता से उससे कहा कि मैं अभी भी अपनी पढ़ाई कर रहा हूं और उसकी विनती कितना भी उचित क्यों न हो, उसके पोते को नहीं ले जा सकता। उस अत्यन्त बूढ़े आदमी ने कहा कि उसका परिवार खत्म हो चुका है और सिर्फ उसका यही पोता बचा है। वह चाहता था कि उसका पोता जिन्दा रहे। मुझे अब भी उसका आंसू भरा चेहरा याद है, लेकिन मैंने उसे वास्तविकता बता दी थी। मेरे अपने भविष्य का पता नहीं था तो मैं उसके पोते को कैसे पालता? हम लोग आगे बढ़ गये। आगे की यात्रा में हमने सामान बिखरा हुआ देखा, लेकिन लाशें उस समय तक हटायी जा चुकी थीं। हालांकि हवा में बदबू जरूर बची हुई थी। उसी समय मैंने प्रतिज्ञा की कि मैं दोनों मुल्कों के बीच अच्छे रिश्ते को बढ़ावा दूंगा। यही वजह थी कि मैंने वाघा सीमा पर मोमबत्ती जलाना शुरू किया। यह कार्यक्रम करीब 20 साल पहले शुरू हुआ था। यह एक छोटा आंदोलन था जो 15-20 लोगों को लेकर शुरू हुआ था। इस पार एक लाख लोग और पाकिस्तान से सीमित संख्या में ही सही, इस मुहिम में कुछ लोग शामिल होते हैं। उस दौरान लोगों के उत्साह की सीमा नहीं होती। मेरी तमन्ना है कि सरहद को लचीला बनाया जाये और अमन के हालात हों ताकि दुश्मनी दूर की जा सके। मैं उस बस में था जिसमें प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी लाहौर गये थे। दोनों ओर खुशमिजाजी का माहौल था। मुझे उम्मीद थी कि इस यात्रा से दोनों देशों के बीच आपसी व्यापार, संयुक्त कारोबार और लोगों के बीच संपर्क नियमित हो जायेंगे, लेकिन सरहद के दोनों ओर कंटीले तार और वीजा की पाबंदियों के जरिये लोगों को इस मुल्क से उस मुल्क में जाने से रोकता हुआ देखकर मुझे निराशा होती है। पहले बुद्धिजीवी, संगीतकार और कलाकार आपस में मिल सकते थे और संयुक्त कार्यक्रम भी कर सकते थे, लेकिन वीजा देने में सरकारों की ओर से अपनायी जाने वाली कठोरता के कारण यह भी रुक गया है। करीब-करीब, आधिकारिक और गैर-आधिकारिक संपर्क भी नहीं रह गया है। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री बनने जा रहे इमरान खान ने एक इंटरव्यू में कहा है कि वह व्यापार सुनिश्चित करेंगे। मेरी एक ही चिन्ता है कि सेना से उनकी नजदीकी शायद उन्हें अपने वायदे पूरे करने नहीं दे, लेकिन हो सकता है कि सेना वाली बात बढ़ा-चढ़ा कर कही जा रही हो। वह भी शांति चाहती है, क्योंकि उसके लोग ही युद्ध लड़ते हैं और उससे जुड़ी बाकी चीजें भी उन्हें झेलनी पड़ती है। बाधा पैदा करने वाली बात यह है कि भारत में फैसला चुने हुए जनप्रतिनिधि लेते हैं और यह पाकिस्तान के विपरीत है जहां अंतिम फैसला फौज के हाथ में है।

यह कल्पना करना कठिन है कि इमरान खान फौज के आला अफसरों को समझा पाते हैं या नहीं? नई दिल्ली को कोशिश करनी चाहिए, लेकिन उसने यह कठोर रवैया अख्तियार कर लिया है कि जब तक इस्ल७ाामाबाद आतंकवादियों को पनाह देना बंद नहीं करता और मुम्बई आतंकी अमलों के दोषियों को सजा नहीं देता तब तक वह वार्ता नहीं करेगी। दोनों देशों के बीच अच्छे संबंधों के लिए भारत की मांग को ध्यान में रखकर इमरान खान को पहल करनी चाहिए। ❑

स्मृति-शेष

एक दिन ऐसे जाऊंगा : विष्णु खरे

विष्णु खरे के ये शब्द अन्ततः अक्षरशः सत्य साबित हो गये—*''एक दिन ऐसे जाऊंगा कि कोई मुझे देख नहीं पायेगा, और बिना पुकारे पता नहीं कहां से, वह झपटता हुआ तीर की तरह आयेगा, पहचानता हुआ मुझे अपने साथ ले जाने के लिए।''*

हिन्दी के सुप्रसिद्ध कवि, पत्रकार और हिन्दी अकादमी के उपाध्यक्ष विष्णु खरे नयी पीढ़ी के सबसे महत्त्वपूर्ण कवि के रूप में जाने जाते थे। उन्होंने कविताओं में जो बदलाव किया उसी का अनुसरण बाद की पीढ़ियों ने किया। कविता लिखने का उनका अंदाज थोड़ा अलग था। वह कहानियों के अंदाज में कविता या फिर कहें, तो कविता में कहानी लिखा करते थे। कविता में किये इन प्रयोगों से पहले उनकी छवि एक आलोचक की थी। उन्हें बॉलीवुड और अंतर्राष्ट्रीय फिल्मों की भी बड़ी समझ थी। वह अंग्रेजी के व्याख्याता भी थे। उनके मित्र रहे कवि और अनुवादक गिरधर राठी के मुताबिक, वे एक अलग किस्म के कवि थे। उनकी दुनिया भी अलग-सी थी। अपनी आलोचना का वह कभी बुरा नहीं मानते थे। वहीं, कवि मंगलेश डबराल ने कहा कि अपने विचारों पर वह इस तरह अडिग रहते थे कि उनकी छवि एक गुस्सैल आदमी की हो गयी थी। लेकिन वे ऐसे नहीं थे। जिन्होंने उन्हें करीब से देखा है, वे जानते हैं कि उनमें एक सहज हास्य बोध था। वे मिलनसार थे और लोगों की भावनाओं की कद्र भी करते थे। ❑

स्मृति-शेष

कल्पेश याग्निक

❑ **अशोक वानखेड़े**

कल्पेश याग्निक एक राजस्थानी परिवार का लड़का था, जिसके पिता इंदौर आकर बस गये थे। उनका इंदौर के क्लॉथ मार्केट में कपड़े का व्यवसाय था। कल्पेश इंदौर के क्रिश्चियन कॉलेज में पढ़ते थे और यहीं से वे छात्र-राजनीति में सक्रिय हुए। वो एनएसयूआई में सक्रिय था। कल्पेश हिन्दी ओर अंग्रेजी का ज्ञाता था, साथ ही उसे पढ़ने का बहुत शौक था। नेताओं में उस जैसा पढ़ा-लिखा नेता उस समय इंदौर में कोई नहीं था। इस कारण वो अपने दोस्तों और राजनैतिक साथियों के बीच थिंग टैंक की तरह बन गया था, सब उससे पूछते थे कि क्या बोलना है या क्या लिखना है। वो अक्सर इंदौर स्थित फ्री प्रेस अखबार के दफ्तर में युनिवर्सिटी की प्रेस रिलीज देने जाया करता था। वहां पत्रकार श्रवण गर्ग चीफ रिपोर्टर हुआ करते थे और मैं बिजनेस एडिटर था। प्रेस रिलीज देने के अलावा वो यूनिवर्सिटी के अंदर की खबरें भी बताया करते था। एक बार श्रवण जी कल्पेश से बोले कि तुम यूनवर्सिटी की खबरें बताते हो, तो उन्हें लिख भी दिया करो। यदि तुम्हें आपत्ति न हो, तो हम तुम्हारे नाम से छाप भी दिया करेंगे। चूंकि वो मारवाड़ी परिवार से ताल्लुक रखता था औरप इन परिवारों में ऐसा करना काफी अलग चीज था। कल्पेश ने हां कह दिया। उसके बाद कल्पेश फ्री प्रेस में हर हफ्ते यूनिवर्सिटी की दो-तीन खबरें करके दे दिया करता था। उसे एक खबर के लिए 25 रुपये मेहनताना मिलता था। इसी दौरान उसका छोटा भाई नीरज, भाजपा नेता कैलाश विजयवर्गीय से जुड़े, उन्होंने उनकी मदद की और उन्हें फायनेंशियली अच्छी तरह सैटल कराया। उसके बाद श्रवण गर्ग किसी अन्य मीडिया हाउस में एडिटर के पद पर आये। उस समय भोपाल में फ्री प्रेस ब्यूरो खाली था। उन्होंने कल्पेश याग्निक से कहा कि अब समय आ गया है कि तुम पत्रकारिता को गंभीरता से लो और फ्री प्रेस भोपाल में ब्यूरो

चीफ का पद संभालो। कल्पेश भोपाल आया और अपनी मेहनत-काबिलियत से खुद को स्टेट लेवल पर स्थापित किया। उसके बाद श्रवण गर्ग जब दैनिक भास्कर में गये, तो अपने साथ कल्पेश को भी वहां ले गये। उसके बाद वे कई एडिशन में एडिटर रहे और फिर दैनिक भास्कर के ग्रुप एडिटर बने। कल्पेश जितना पढ़ा-लिखा और संस्कारित था, उतना ही देखने में खूबसूरत भी था। मैंने कभी नहीं सुना कि स्टूडेंट लाइफ में उसका कोई अफेयर हुआ हो। फ्री प्रेस में भी बहुत लड़कियां थीं, लेकिन कभी किसी ने कल्पेश को लेकर कोई शिकायत नहीं की। इसी तरह दैनिक भास्कर में भी उसकी कई महिला सहकर्मी रहीं, लेकिन कभी कोई ऐसी बात सामने नहीं आयी। कल्पेश के लिखने, अपने मातहतों के साथ काम करने के तरीके, उसके गुस्से आदि को लेकर विवाद हो सकते हैं, लेकिन उसने किसी महिला का शोषण किया हो, यह बात मैं नहीं मान सकता। जिस लड़की के साथ कल्पेश के संबंध की अभी चर्चा हो रही है, वो छोटे से शहर नीमच से आयी थी और उसने पत्रकारिता में एक मुकाम हासिल करने का प्रयास किया। जब लड़की को यह अहसास हो जाये कि वो लड़की है, तो उसकी तरक्की के कई रास्ते खुल जाते हैं। वो कई अखबारों से होते हुए भास्कर पहुंची। कैसे वो कल्पेश याग्निक के करीब आ गयी यह मेरे लिए आज भी अविश्वसनीय है। लेकिन जब कोई एक ओहदे पर पहुंच जाता है और कोई लड़की बिल्कुल समर्पण करके उसके पास आ जाती है, तो हो सकता है कि वो इंसान कहीं बहक जाये। उसने उस लड़की को सैटल करने का बहुत प्रयास किया, लेकिन वो बहुत महत्त्वाकांक्षी थी, उसे बहुत ज्यादा चीजें चाहिए थीं, जो कल्पेश देने में असमर्थ था। उसके बाद कल्पेश लोगों से कटकर रहने लगा। जब उस लड़की के फोन आते, तो वो घंटो बाहर जाकर उससे बात करता। इससे लोगों में भी शंका होने लगी कि क्या बात है, कुछ गड़बड़ है। लड़की मुम्बई में किसी के साथ लिव-इन में रहने लगी। कुछ दिन पहले मार्केट में एक ऑडियो टेप आया, जिसमें कल्पेश किसी को समझा रहा है और लडत्रकी हां-हूं के अलावा कुछ खास नहीं कह रही है। इस ऑडियो टेप से लॉजिकली यह कतई नहीं कहा जा सकता है कि इन दोनों के कोई संबंध होंगे। सवाल यह भी उठता है कि कल्पेश समझा क्यों रहा है। मार्केट में आने के बाद कल्पेश के परिवार तक भी यह टेप पहुंच गया। उनके परिवार में भूकंप आ गया। कल्पेश किसी को समझाने की स्थिति में नहीं था। दूसरी ओर उस लड़की का प्रेशर था। वो अपने घर के फ्रंट पर भी बहुत बड़ी लड़ाई लड़ रहा था। लेकिन यह कहना मुझे ठीक नहीं लगता कि उसने लड़की के कारण आत्महत्या की। इसके लिए मेरे पास आसान तर्क है कि जब उसने आत्महत्या के कुछ दिन पहले ही पुलिस के आला अधिकारियों को लिखकर सूचित किया कि कोई मुझे ब्लैकमेल कर रहा है, तो फिर यदि वो उस लड़की के कारण ही मरा होता, तो इस बात को ओपन नहीं करता और पुलिस को पत्र नहीं देता। भड़ास के यशवंत के साथ कल्पेश का वहाट्सअप पर वार्तालाप हुआ, उसमें यशवंत कहते हैं कि आूडिया के आधार पर मैं स्टैबलिश नहीं कर पा रहा हूं कि आपके इस लड़की के साथ कोई संबंध थे, तो कल्पेश ने कहा कि धन्यवाद, आप ऐसा सोच रहे हैं, वरना लोग तो इसमें मजे लेने के तरीके ढूंढ़ते हैं। ये चीजें मार्केट में थीं, उसे पता था। ऑडियो टेप के कारण उसका पारिवारिक जीवन अस्त-व्यस्त हो गया, ये भी उसे पता था। लड़की और क्या करती, उसे जितना डैमेज करना था, वो इस ऑडियो टेप के जरिए डैमेज कर चुकी थी। इस डैमेज से बचने के लिए कल्पेश ने पुलिस तक की मदद ले ली थी। मार्केट में चीजें ओपन हो चुकी थीं। इसके बाद ऐसा क्या हुआ कि एक दिन वो बाथरूम जाता है और बाहर आने के बाद ऐसी के डक्ट पर खड़े होकर चीने छलांग लगाकर आत्महत्या कर लेता है। इस आत्महत्या को एक्सीडेंट का रूप क्यों दिया

गया? एक मित्र होने के नाते मेरे मन में कई सवाल हैं। क्या वाकई लड़की का प्रेशर इतना था। यदि वो टेप मार्केट में न आया होता और लड़की उस टेप को मार्केट में लाने की धमकी दे रही होती, फिर उसने आत्महत्या की होती, तो भी ये जायज होता। लेकिन टेप मार्केट में आ चुका था तो अब डर किस बात का था। कई सवाल हैं....घर का प्रेशर, लड़की का प्रेशर, प्रोफेशन का प्रेशर। क्या भास्कर में वो इनसिक्योर्ड था? सवाल उठता है कि उसकी आत्महत्या को क्यों बार-बार एक्सीडेंट बोला गया? मुख्यमंत्री ने किस बिना पर कह दिया कि जो भी लड़की इसके पीछे होगी, उसे छोड़ेंगे नहीं। क्या मध्य प्रदेश के मुख्यमंत्री व्हाट्सअप पर चलने वाली गॉसिप पर बात करते हैं क्या, या मुख्यमंत्री से किसी ने कहलवा दिया? क्या कोई अपने सिर से ये बोझ उतारना चाहता था, उस लड़की के नाम पर? ऐसे कई सवाल हैं, जिनके जवाब जांच से सामने आने चाहिए। हो सकता है, इसमें बड़े-बड़े लोग हों, चीजें बाहर नहीं आ पायी हैं। मित्र होने के नाते मैं इतना जानता हूं कि कल्पेश कैरेक्टर का भ्रष्ट नहीं था। व्यक्ति तीन चीजों से टूटता है—परिवार से टूटता है, ब्लैकमेलिंग से टूटता है या जिस जगह बैठा है, उसका सम्मान जाने के डर से टूटता है। पत्रकारिता में ये सम्मान बहुत बड़ा होता है। यदि एक एडिटर को लगे कि अब वो वहां नहीं रहेगा, तो उसका प्रेशर जबरदस्त होता है। जब सभी जगह से उस पर प्रेशर आया, तो उसके पास कोई रास्ता ही नहीं बचा। क्या कारण था कि वो जिस अखबार में काम करता था, उसके ऑल इंडिया एडिटर्स की मीटिंग के एक दिन पहले ही उसने आत्महत्या की? मीडिया जैसी अनसर्टेनिटी किसी अन्य क्षेत्र में नहीं है। यहां किसी को पता नहीं होता कि उसे वहां से कब जाना है। ये प्रेशर झेलने के लिए मित्रों की, परिवार की जरूरत होती है। मुझे लगता है कि कल्पेश लोक-लज्जा के कारण अपने मित्रों से कट गया था और परिवार को शायद वो लड़की का प्रेशर एक्सप्लेन नहीं कर पाया। वो सब झेलता रहा। मीडिया में तो मान-सम्मान की यह स्थिति है कि आदमी ओहदे से हट जाये, तो उसके अगले सेकेण्ड ही लोग उसका फोन उठाना बंद कर देते हैं। ❑

कल्पेश याग्निक : साथियों के विचार

कल्पेश याग्निक एक ऐसे पत्रकार थे, जो स्वयं में एक संस्था थे। कल्पेश याग्निक ने विश्वविद्यालय की खबरों से जिन्दगी शुरू की और भास्कर जैसे हिन्दी के प्रसिद्ध अखबार के ग्रुप एडिटर बने। कल्पेश याग्निक की आत्महत्या ने मनोवैज्ञानिक सवाल तो खड़े किये ही, संस्थान की निर्ममता पर भी कई सवाल तो खड़े किये। अब जब कल्पेश याग्निक हमारे बीच नहीं हैं, तब उनलोगों की असली परीक्षा होनी है, जिन्होंने कल्पेश याग्निक से कभी सीखा, जिन्होंने कल्पेश याग्निक की कभी प्रशंसा की और खासकर उस संस्थान को अगे बढ़ाया और उससे जितना लिया उससे ज्यादा संस्थान को दिया।

कल्पेश याग्निक की आत्महत्या की गुत्थी उलझी नहीं है। गुत्थी सिर्फ इस शर्त में उलझी है कि कल्पेश याग्निक पर किसने मानसिक दबाव डाला। कल्पेश याग्निक को आत्महत्या की तरफ ले जाने की किन लोगों ने कोशिश की, किन लोगों ने कल्पेश याग्निक के सामने आत्महत्या के अलावा कोई रास्ता नहीं छोड़ा। उन मास्टरमाइंड व्यक्तियों को क्यों इंदौर पुलिस ने बचाया और कल्पेश याग्निक की मौत को क्यों मीडिया ने बिना कोई सवाल उठाए दफन हो जाने दिया। पता नहीं इन सवालों के जवाब कभी मिल पायेंगे या नहीं। क्योंकि जब व्यक्ति हमारे बीच नहीं होता है, तो उसके दोस्त संगे-साथी, प्रशंसक यहां तक कि उसका परिवार भी अप्रियता से बचने के लिए सवालों को कुरेदता नहीं है, उन्हें विलुप्त हो जाने देता है।

आदित्य चौक से और सलोनी अरोरा, इन दोनों में सिर्फ सलोनी अरोरा ही क्यों चर्चा में आइं और आदित्य चौक से क्यों चर्चा में नहीं आये? उन्हें मीडिया ने क्यों अपनी खोज का विषय नहीं बनाया?

भास्कर के मालिक सुधीर अग्रवाल से जरूर एक सवाल है। और मैं ये मानता हूं कि सुधीर अग्रवाल में मानवता है, लेकिन वो मानवता उस समय क्यों उनके भीतर नहीं जागी जब उन्हीं के अखबार के ग्रुप एडिटर कल्पेश याग्निक एक ऐसी परेशानी से घिर गये थे, जो दरअसल परेशानी थी ही नहीं।

कल्पेश याग्निक उन्हें बहुत याद आयेंगे, जिनका खाना-पीना, उठना-बैठना, सोना-जागना, चलना-फिरना सब पत्रकारिता है। अब कोई और कल्पेश याग्निक हमारे बीच से न उठ जाये, इसकी चिन्ता उन्हें करनी चाहिए, जो जीवित हैं।

जो जान देते हैं वो बहुत बहादुर होते हैं। लेकिन ऐसी बहादुरी समाज में उदाहरण नहीं बनती। अगर उदाहरण बनना है तो जिन्दा रहना होगा। यही बात मैं अपने उन सभी साथियों से कह रहा हूं, जो सिर्फ और सिर्फ पत्रकारिता को अपनी जिन्दगी का मूल उद्देश्य बनाये हुए हैं।

–संतोष भारतीय

× × ×

दैनिक भास्कर के ग्रुप एडिटर कल्पेश याग्निक को पत्रकारिता के क्षेत्र में लाने वाले दैनिक भास्कर के पूर्व ग्रुप एडिटर श्रवण गर्ग कहते हैं कि कल्पेश एक बहादुर पत्रकार था, उसके इस तरीके से आत्महत्या करने की बात सोचना ही मुकिश्ल लगता है। वो दैनिक भास्कर में बहुत अच्छा काम कर रहा था और खुद भी था। अचानक क्या हुआ कि उसे ये कदम उठाना पड़ा, अभी भी लोगों को समझ में नहीं आ रहा है। लड़की उसे ब्लैकमेल कर रही थी और उसके घरवालों को भी यह पता था, लेकिन अचानक ऐसा क्या हुआ कि उसने ऐसा कदम उठा लिया। समझ नहीं आ रहा कि उसपर किस तरह का प्रशेर था, क्योंकि वो ऐसा आदमी तो नहीं था, वो बहुत बहादुर पत्रकार था। बहुत मेहनत करके ऊपर तक पहुंचा था। आश्चर्य है कि उसने ऐसा क्यों किया। सलोनी बहुत बदतमीज किस्म की लड़की थी। एक बार तो मैंने खुद उसे निकाल दिया था, पता नहीं वो कैसे वापस आ गयी। कुछ समझ नहीं आता।

–श्रवण गर्ग

सामयिकी

कहां है हमारा मीडिया?

❑ पी. साईंनाथ

लोकतंत्र के चौथे स्तम्भ यानी मीडिया के साथ समस्या यह है कि चारों स्तम्भों के बीच यही इकलौता है जो मुनाफा खोजता है। भारत का समाज बहुत विविध जटिल और विशिष्ट है, लेकिन बहुत नियंत्रित और संकुचित है। यह स्थिति खासी खतरनाक है।

बीते दो दशकों में हमने पत्रकारिता को कमाई के धंधे में बदल डाला है। मीडिया पर जिनका नियंत्रण है, वे पहले से ज्यादा विशाल और ताकतवर हो चुके हैं। सबसे बड़े मीडिया तंत्र 'नेटवर्क 18' का उदाहरण लें। इसका एक ही मालिक है। ईटीवी नेटवर्क में तेलुगु को छोड़कर, उसके बाकी सारी चैनल उसी एक आदमी के हैं। उसे अपने कब्जे वाले सारे चैनलों के नाम तक नहीं पता हैं, बावजूद इसके वह जब चाहे तब फतवा जारी कर सकता है। ऐसा ही होता है। इन चैनलों के व्यावसायिक हित, दरअसल इन्हें नियंत्रित करने वालों के व्यावसायिक हित हैं।

पिछले 20 सालों में मीडिया के मालिक संस्थान ही नवउदारवाद और निजीकरण के सबसे बड़े लाभार्थी रहे हैं। अब निजीकरण का अगला दौर आया है। अगर खनन का निजीकरण होता है तो टाटा, बिड़ला, अंबानी और अडानी सभी लाभार्थी होंगे। अगर प्राकृतिक गैस का निजीकरण हुआ तो एस्सार और अंबानी को फायदा होगा। स्पेक्ट्रम से टाटा, अंबानी और बिड़ला को लाभ होगा। मतलब मीडिया मालिक निजीकरण के सबसे बड़े लाभार्थी बनकर सामने आयेंगे। जब बैंकों का निजीकरण होगा तो ये लोग बैंक भी खोल लेंगे।

इन मीडिया संस्थानों ने एक व्यक्ति और एक पार्टी को गढ़ने में काफी पैसा लगाया और लोकतंत्र की दूसरी ताकत को कूड़ेदान में डाल दिया। यह सब जिनके लिए और जिस पार्टी के लिए किया गया, वह इनके मन का सारा कुछ, इनके मनमाफिक तेजी से कर नहीं पा रही है। इसलिए ये लोग खफा हैं। लेकिन उनके पास विकल्प नहीं है। तो हम देख रहे हैं कि मीडिया में जहां-तहां हल्की-फुल्की शिकायतें आ रही हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि भारतीय मीडिया राजनीतिक दृष्टि से मुक्त है लेकिन मुनाफे का गुलाम है। यही उसका चरित्र है।

मीडिया संस्थान कोई नई बात नहीं हैं लेकिन कई दूसरे देशों के मुकाबले भारत में इनकी गति तीव्र है। पिछले दस सालों के अपने मीडिया पर नजर दौड़ाएं। पत्रकारिता का असर डालने वाले तीन सबसे बड़े भंडाफोड़ मुख्यधारा की पेशेवर पत्रकारिता ने नहीं किये। ये तीन खुलासे हैं—असांजे और विकीलीक्स, एडवर्ड स्नोडेन और चेल्सिया मैनिंग। आखिर ये खबरें पेशेवर समाचार संस्थानों से क्यों नहीं निकलीं? इसलिए कि ये समाचार संस्थान अपने आप में कारोबार हैं, सत्ता प्रतिष्ठान हैं। बाजार में इसका इतना ज्यादा पैसा लगा है कि ये आपसे सच नहीं बोल सकते। अगर शेयर बाजार को इन्होंने निशाने पर लिया तो इनके शेयरों के दाम गिर जायेंगे। जिन्हें अपने लाखों के शेयर बचाने हैं वे आपको सच बतायेंगे? पत्रकारिता की मुख्य कसौटी कमाई हो गयी है, तो आपसी मिलीभगत जरूरी है।

फर्ज कीजिए आप एक मझोले कारोबारी हैं, जो लंबी छलांग चाहता है। मैं अंग्रेजी का सबसे बड़ा अखबार हूं। आप मेरे पास सलाह लेने आते हैं। मैं कहता हूं कि आइए, एक समझौता करते हैं—मुझे अपनी कंपनी में 10 प्रतिशत की हिस्सेदारी दीजिए। इसके बाद मेरे अखबार में आपकी कंपनी के खिलाफ कोई भी खबर नहीं छप सकेगी। अब सोचिए, यदि एक अखबार 200 कंपनियों में हिस्सेदारी खरीद ले, तो वह अखबार रह जायेगा?

अच्छी पत्रकारिता का काम है समाज के भीतर संवाद की स्थिति पैदा करना, देश में बहसें उठाना और प्रतिपक्ष को जन्म देना। यह एक लोकसेवा है। सेवा को जब आप धन में तौलते हैं तो हमें इसकी कीमत चुकानी पड़ती है। जरा ग्रामीण भारत को देखिए। 83.3 करोड़ की आबादी, 784 भाषाएं, जिनमें छह भाषाओं के बोलने वाले पांच करोड़ से ज्यादा और तीन भाषाओं को बोलने वाले आठ करोड़ से ज्यादा। ऐसे देश के शीर्ष छह अखबारों के पहले पन्ने पर ग्रामीण भारत को केवल 0.18 प्रतिशत जगह मिल पाती है, देश के छह बड़े समाचार चैनलों के प्राइमटाइम में 0.16 प्रतिशत जगह मिल पाती है।

मैंने ग्रामीण भारत में हो रहे बदलावों की पहचान के लिए 'पीपुल्स आर्काइव ऑफ रूरल इंडिया' की शुरुआत की। मैं जहां जाता हूं, लोग मुझसे पूछते हैं—आपका रेवेन्यू मॉडल क्या है? मैं जवाब देता हूं कि मेरे पास कोई मॉडल नहीं है, लेकिन पलट कर यह जरूर पूछता हूं कि अगर रचनाकार के लिए रेवेन्यू मॉडल का होना जरूरी होता तो हमारे पास कैसा साहित्य या कैसा कलाकर्म मौजूद होता? अगर वाल्मीकि को रामायण, या शेक्सपियर को अपने नाटक लिखने से पहले अपने रेवेन्यू मॉडल पर मंजूरी लेने की मजबूरी होती, तो सोचिए क्या होता! जो लोग मेरे रेवेन्यू मॉडल पर सवाल करते हैं, उनसे मैं कहता हूं कि मेरे जानने में एक शख्स है, जिसका रेवेन्यू मॉडल बहुत बढ़िया था, जो 40 साल तक कारगर रहा। उसका नाम था वीरप्पन!

इस वक्त की राजनीतिक परिस्थिति हमारे इतिहास में विशिष्ट है। पहली बार एक खास विचारधारा का प्रचारक बहुमत के साथ प्रधानमंत्री बना है। बहुमत के साथ जब कोई प्रचारक सत्ता में आता है तो बड़ा फर्क पड़ता है। काफी कुछ बदल जाता है। मीडिया दरअसल इसी नई बनी स्थिति में खुद को अंटाने की कोशिश कर रहा है। सामाजिक, धार्मिक कट्टरपंथ और बाजार का कट्टरपंथ मिल-जुलकर देश की राजनीतिक जमीन पर कब्जा करने में लगा है। दोनों को एक-दूसरे की जरूरत है। ऐसे में आप क्या कर सकते हैं? सबसे जरूरी काम है कि मीडिया के जनतंत्रीकरण के लिए लड़ा जाये—कानून के सहारे, विधेयकों के सहारे और लोकप्रिय आंदोलनों के सहारे। साहित्य, पत्रकारिता,

किस्सागोई, ये सब विधाएं बाजार की नहीं, हमारे समुदायों, लोगों, समाजों की देन हैं। इन विधाओं को उन तक वापस पहुंचाने की कोशिश करें।

बाल गंगाधर तिलक को जब राजद्रोह में सजा हुई, तब लोग सड़कों पर निकल आये थे। एक पत्रकार के तौर पर उनकी आजादी की रक्षा के लिए लोगों ने जान दी थी। ऐसा था तब मुम्बई का मजदूर वर्ग! इनमें ऐसे लोग भी थे जिन्हें पढ़ना तक नहीं आता था, लेकिन वे एक भारतीय की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता के अधिकार को बचाने के लिए घरों से बाहर निकले। भारतीय मीडिया और भारतीय जनता के बीच ऐसा एक महान रिश्ता था। आपको मीडिया के जनतांत्रीकरण के लिए, सार्वजनिक प्रसारक के सशक्तीकरण के लिए लड़ना होगा। आपको मीडिया पर एकाधिकार को तोड़ने में सक्षम होना होगा—यानी एकाधिकार से आजादी! मीडिया एक निजी फोरम बनकर रह गया है, उसमें सार्वजनिक सवालों की जगह बढ़ानी होगी। इसके लिए हमें लड़ने की जरूरत है। यह आसान नहीं है लेकिन मुमकिन है। ❑

नोआखली विशेषांक के लिए आलेख, तस्वीर और अपने अनुभव भेजने हेतु निवेदन

सर्व सेवा संघ द्वारा 'शांति सम्प्रीति मैत्री यात्रा', बंग्लादेश का आयोजन 26 सितंबर से 3 अक्टूबर, 2018 तक किया गया था। हम चाहते हैं कि बंग्लादेश की इस यात्रा से संबंधित सर्वोदय जगत का एक विशेषांक प्रकाशित करें।

इसके लिए यह आवश्यक है कि इस यात्रा में शामिल सभी 19 यात्री साथी अपने अनुभव हमें लिख भेजें, ताकि 'सर्वोदय जगत' का 'नोआखली विशेषांक' प्रकाशित किया जा सके।

कृपया 15 नवंबर, 2018 तक अपने अनुभव एवं आलेख सर्वोदय जगत के ई-मेल **sarvodayajagat@gmail.com** अथवा कार्यालय, वाराणसी के पते पर भेजने की कृपा करें। **–सं.**

बा-बापू : 150वीं जयंती

जनमानस के लिए बा बन गईं जगदम्बा

महोत्सव के मौके पर फिल्म अभिनेत्री रोणिी हदंगड़ी को रंग शांति स्मृति सम्मान रंगकर्मी पद्मश्री वंशी कौल ने दिया। महिला रंगकर्मी रोहिणी को निर्माण कला मंच की ओर से नगद राशि, प्रशस्ति पत्र व प्रतीक चिन्ह उपहार स्वरूप भेंट किया गया। उनके सम्मान में शहर के प्रमुख रंगमंच संस्थाओं में प्रवीण सांस्कृतिक मंच, प्रयास, प्रस्तुति, प्रांगण, विश्वा, एचमएटी के अलावा बिहार बाल भवन किलकरी की ओर से पुष्प-गुच्छ देकर सम्मानित किया गया। पांच दिवसीय नाटक के उद्घाटन पर प्रशासनिक अधिकारी व्यासजी, पद्मश्री ऊषा किरण खान, वरिष्ठ रंग निर्देशक एवं मध्य प्रदेश नाट्य विद्यालय भोपाल के निदेशक संजय उपाध्याय आदि मौजूद थे।

दमदार आवाज और बेहतर प्रस्तुति ने जीता दिल : मंच पर आसीन फिल्म अभिनेत्री व रंगमंच कलाकार रोहिणी हदंगड़ी की आवाज कभी कड़क तो कभी वात्सल्य से भरी थी। कस्तूरबा अर्थात जगदम्बा के बहाने कलाकार रोहिणी ने एकल अभिनय कर एक स्त्री के विविध स्वरूप को बखूबी बयां कर दर्शकों का दिल जीता। रोहिणी द्वारा दो साल पूर्व किये गये नाटक 'जगदम्बा' की प्रस्तुति पटना में पहली बार हो रही थी। नाटक के दौरान कलाकर रोहिणी ने बापू की पत्नी कस्तूरबा के बहाने मां, मित्र, पत्नी, गुरु माता के साथ व्यक्तिगत, राजनीतिक और भावनात्मक यात्रा को बखूबी दर्शा एक स्त्री के विविध स्वरूप को बयां कर लोगों का दिल जीता। नाटक जगदम्बा के दमदार संवाद जिसमें दो दिन पहले किसी को नहीं लगता था कि बापू को हिरासत में ले लिया जायेगा। बापू को गिरफ्तार करने पुलिस आयी। बापू अर्थात मोहनदास करमचंद गांधी विश्व का सम्मानीय नाम। जिसके कारण मुझे भी लोग सम्मान की नजरों से देखते। बापू कभी मजाक में हमें जगदम्बा कहते। फिर गांधी की पत्नी का होने का क्या मतलब रहता। मां जगदम्बा भले ही बापू की पत्नी और राष्ट्रमाता थीं पर उनका भी अपना सिद्धांत था। वह अपने बच्चों के अलावा बापू के भतीजे, आश्रम के कैदी और महादेव देसाई की नजरों में 'बा' बनकर रही। वह देश के साथ-साथ अपने दो बेटे हरिलाल और मणिलाल के जीवन में शामिल पीड़ित क्षणों को साझा करने में भी पीछे नहीं हटती। कलाकार रोहिणी ने कस्तूरबा से जगदम्बा तक की व्यक्तिगत, राजनीतिक और भावनात्मक यात्रा को बखूबी निभाया।

उपेक्षित विरासत

एक स्कूल, जो गांधी का सपना था। नई तालीम, नेशनल स्कूल। पूरे देश में गांधी के लोगों ने इसे खोला था। यहां पर मैं दो स्कूलों की चर्चा करूंगी। एक दरभंगा का और दूसरा वर्धा का। वर्धा के स्कूल का दो कारणों से। एक तो यह सबसे अंत में बना और दूसरा यह स्कूल आज भी पुराने स्वरूप में है। वर्धा के स्कूल में अगर जाकिर हुसैन शिक्षक थे, तो दरभंगा के नेशनल स्कूल का एक छात्र प्रधानमंत्री (नेपाल) बना, तो दूसरा मुख्यमंत्री (कर्पूरी ठाकुर)। गांधी प्राथमिक शिक्षा को व्यावहारिक बनाना चाहते थे। वह बच्चों में विज्ञान की ललक पैदा करना चाहते थे। उनके इस विजन को लेकर देश भर में नेशनल स्कूल की स्थापना की गयी। दरभंगा में भी करीब पांच एकड़ के परिसर में दो छोटे-छोटे कमरों से स्कूल की शुरुआत हुई। गांधीजी ने खुद इसका शुभारंभ किया था। वर्धा में जहां स्कूल का खपरैल भवन 1936 में प्रसिद्ध कारोबारी जमुना लाल बजाज ने बनाकर दिया, वहीं दरभंगा में दोमंजिला पक्का स्कूल भवन उसी कालखंड में तिरहुत की महारानी प्रिया ने अपनी गाड़ी बेचकर जुटाए पैसों से बनाकर दिया। वर्धा के परिसर में गांधी खुद रहते थे, जबकि दरभंगा के स्कूल के कर्ताधर्ता थे जयप्रकाश नारायण के ससुर ब्रजकिशोर बाबू। उनका स्कूल से लगाव इतना गहरा था कि मरने के बाद उनका अंतिम संस्कार इसी परिसर में हुआ। **–स.ज. प्रतिनिधि**

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा' उत्तरार्द्ध

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं। –सं.

कस्तूरबा जानती थी कि मोहनदास ने बैठक बुलाने का निर्णय लेते हुए उससे सलाह नहीं ली। सितंबर का महीना। मौसम न गर्म था, न ठंडा, मोतदिल था। मोहनदास कुछ तमिल महिलाओं को सरकार को घेरने की अपनी योजना समझा रहे थे। कस्तूरबा को महसूस हुआ, जानकार उसकी अनदेखी की जा रही है। उस दिन रसोई में हुई बात याद आ गयी। कहीं इसलिए तो उनका व्यवहार नहीं बदल गया? हालांकि ऐसी किसी बात की संभावना नहीं थी। कस्तूरबा ने मोहनदास को अलग बुलाया और सीधा सवाल किया,

'मुझमें ऐसी कौन-सी कमी है जो मुझे सत्याग्रह करके जेल जाने के अयोग्य ठहराती है?' फिर बोली, 'उस दिन तो मुझे जेल जाने और अनशन करके मर जाने देने को तैयार थे।'

मोहनदास एक मिनट चुप रहे जवाब दिया, 'तुम पर अविश्वास का सवाल नहीं है। अगर मैं तुम्हें सत्याग्रह करके जेल जाने को कहता तो तुम अवश्य जाती, पर मेरी इच्छा का सम्मान करने के लिए। क्योंकि मैं तुम्हारा पति हूं। वहां जाकर बीमार हो जाती और जेल की ज्यादतियां बर्दाश्त न कर पाती, तो मैं अपने को कभी माफ न कर पाता।'

कस्तूरबा आसानी से हार मानने वाली नहीं थी, 'अगर तुम सहन कर सकते हो, मेरे बच्चे सहन कर सकते हैं तो मैं क्यों नहीं कर सकती?'

मोहनदास ने दुचित्ते मन से कहा, 'वहां की कठिनाइयों और सख्तियों के बारे में सोच लो।'

'मुझे कुछ नहीं सोचना, मैं इस सत्याग्रह में शामिल हूंगी।'

मोहनदास देख रहे थे, कस्तूरबा के चेहरे पर संतुलित आक्रोश और संघर्ष में उतरने का संकल्प था।

23 सितंबर, 1913 की तारीख थी। सोलह व्यक्ति जिनमें बारह मर्द और चार महिलाएं थीं, सफरी थैले लिये फीनिक्स स्टेशन की तरफ जा रहे थे। उनके पीछे कुछ फीनिक्सवासी चल रहे थे। वे सोलह लोग नार्थ बाउंड गाड़ी में जोहान्सबर्ग के लिए रवाना हुए। प्लेटफार्म पर खड़े लोगों की आंखें नम हो गयीं। वे उन्हें विदा करने आये थे। गाड़ी में चढ़ने से पूर्व कस्तूरबा ने अपने छोटे बेटे देवदास को प्यार किया और कुछ समझाया। उस सत्याग्रही जत्थे का नेतृत्व कस्तूरबा कर रही थी। उस जत्थे में काशीबेन, उसका पति छगनलाल, संतोकबेन और रामदास गांधी, सभी गांधी परिवार के लोग थे। डरबन वाले जीवन रुस्तमजी पारसी भी थे, जिनके घर पर, गोरों से बचकर, पहली बार डरबन पहुंचने पर गांधी परिवार को संरक्षण मिला था। वे गांधीजी के मित्र थे और अब पक्के सत्याग्रही हो गये थे। गाड़ी चलने से पहले मोहनदास पहुंचे थे। उन्होंने कस्तूरबा से कहा, 'अगर तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक न रहे तो तुम....'

कस्तूर ने वाक्य पूरा किया, 'तुम निश्चिन्त रहो, कस्तूर जान गयी है अगर जेल तुम्हारा पीहर है तो मेरी नई ससुराल है।'

कहकर कस्तूरबा मुस्कुराई, तब तक गाड़ी चल दी थी। मोहनदास विदा करके फीनिक्स आश्रम लौट गये और वहां रह रहे लोगों के साथ काम में लग गये। अंदर ही अंदर कस्तूरबा की चिन्ता थी। उन्होंने देवदास से कहा, 'तुम्हारी बा उत्साह में चली गयी, कहीं स्वास्थ्य के कारण लौटना न पड़े।'

देवदास बोला, 'नहीं, बापू, बा कभी नहीं लौटेंगी। जब चुनौती आ जाती है तो वे मरती-मरती भी उठ बैठती हैं। आपने देखा नहीं, वे पारसी डॉ. काका के यहां से किस हालत में आयी थीं।'

बापू ने देवदास की तरफ देखा और उठकर जाते हुए बोले, 'बा के बारे में तुम्हारे विश्वास को जानकर अच्छा लगा।'

कस्तूरबा और साथियों की जोहान्सबर्ग की यात्रा के बारे में किसी तरह का विज्ञापन नहीं किया गया था। यहां तक कि इंडियन ओपिनियन में कोई सूचना नहीं छपी थी। विरोध प्रदर्शन की पूर्व सूचना भी अधिकारियों को नहीं दी गयी थी। हो सकता था कि उन्हें गिरफ्तार ही न किया जाता।

जोहान्सबर्ग की सीमा पर पहुंचकर वे अहिंसक हमलावर पूर्व योजना के अनुसार गूंगे ही बने रहे। न परमिट दिखाया, न पहचान बतायी, यहां तक कि नाम तक भी नहीं बताया। जो होना था सो हुआ, सब औरत और मर्द हिरासत में ले लिये गये। जब तक उनको

अदालत में पेश करके सुनवाई नहीं हो गयी और दोषी करार नहीं दे दिया, पुलिस उन सबके बारे में कुछ नहीं जान पायी। उन सबको तीन-तीन महीने की सश्रम कारावास की सजा सुना दी गयी। वे लोग कौन थे, कहां से आये थे कोई नहीं जान पाया था। कस्तूरबा और साथी महिलाएं सत्याग्रह करके, विदेशी धरती पर, जेल जाने वाली पहली भारतीय महिलाएं थीं। हालांकि उस समय की कस्तूरबा की मनःस्थिति समझना कितना मुश्किल था। पन्द्रह साल का बेटा रामदास दूसरे साथियों के साथ कदमताल करता हुआ मर्दानी जेल में जा रहा था। वह स्वयं पक्के इरादे के साथ भारतीय महिलाओं के सम्मान के रक्षार्थ, कैद का अनुभव करने जनानी जेल में जा रही थी। सबसे छोटे बेटे को छोड़कर, घर के सब लाग सजा काट चुके थे या काट रहे थे। वह स्वयं भी उनमें मिल गयी थी।

सबसे बड़ा दुःख यह था कि मर्द कैदियों को, जिनमें पन्द्रह साल का रामदास भी था, पीटरमेरिट्ज़बर्ग स्थानांतरित कर दिया गया था। लेकिन कस्तूरबा ने अपने मन को उधर से हटाकर अपनी सहयोगी महिला कैदियों को समझाया कि वे जेल की सख्त दिनचर्या का सामना करने के लिए इच्छा शक्ति और साहस जुटाएं। यह कहकर हिम्मत भी बढ़ाई कि जेल से मिला काम और कपड़े धोना, दिन के दिन निबटा लें तो तुम्हें अन्य महिलाओं की तरह अपमानित नहीं होना पड़ेगा। दिन में कई बार रामदास का ध्यान आता था कि वह जेल की कठिन दिनचर्या का सामना कैसे कर रहा होगा? हालांकि बा ने जाते समय छगनलाल गांधी से कहा था कि वह रामदास का ध्यान दखे। रुस्तमजी पारसी का भी बड़ा सहारा था। मन नहीं मानता था तो मोहनदास के इस वाक्य को दोहरा लेती थी कि समाज की सेवा बंटे हुए मन से नहीं की जा सकती, उसके लिए एकनिष्ठ होना जरूरी है। वह अपने मन को, इसी बात को खूंटी बनाकर, उस पर टांगने की कोशिश करती थी।

कस्तूरबाई ने सबसे पहले जेल वार्डनों को अपनी टूटी-फूटी अंग्रेजी में यही समझाने का निरर्थक प्रयत्न किया कि वे सब शाकाहारी हैं, जेल का भोजन खाना उनके लिए संभव नहीं होगा। अलग खाना चाहिए। जेल के वार्डन दोनों वक्त उनका खाना बैरक में सरका जाते थे। पहले दिन तो उस खाने को देखकर सभी को उलटी आने लगी। कस्तूरबा ने चारखानों का एक कलैंडर बना लिया। वह प्रतिदिन एक खाना काट देती थी, एक दिन कम हुआ। ऐसा करने से मन को राहत मिलती थी। प्रतिदिन शाम को कस्तूरबा अपनी सह सहयोगिनियों के साथ फीनिक्स आश्रम की तरह प्रार्थना करती थी। सबको बहुत सुकून मिलता था। प्रार्थना के दम पर ही उन लोगों ने भूख हड़ताल कर दी। कस्तूरबा के नेतृत्व में महिलाओं द्वारा अहिंसक और शांतिपूर्ण विरोध पूरे दक्षिण अफ्रीका के भारतीयों के बीच, खासतौर से महिलाओं में, आक्रोश भर रहा था।

जेल में बंद महिलाओं के शांतिपूर्ण विरोध के समर्थन में और मोहनदास की सलाह पर टाल्स्टाय फार्म की ग्यारह महिलाएं, जो ट्रांसवाल में घुसने में असफल रही थीं, मध्य अक्टूबर में नेटाल में घुसने का प्रयत्न कर रही थीं। मोहनदास ने उनको टाल्सटाय सिस्टर्स का नाम दिया था और गिरफ्तार महिलाओं को फीनिक्स सिस्टर्स का नाम दिया था। लेकिन टाल्स्टाय सिस्टर्स फीनिक्स सिस्टर्स की तरह भाग्यशाली साबित नहीं हुईं। ट्रेड परमिट न दिखाने पर भी न तो उन्हें रोका गया और न गिरफ्तार किया गया। कानून की नजर में इस तरह का भेदभाव आंदोलनकारियों के बीच दरार डालने की साजिश थी।

जेल में चारों महिलाओं के शांतिपूर्ण विरोध के समर्थन में और मोहनदास की सलाह पर टाल्सटाय फार्म की ग्यारह महिलाएं, जो ट्रांसवाल में घुसने में असफल रही थीं, मध्य अक्टूबर में नेटाल में घुसने का प्रयत्न कर रही थीं। मोहनदास ने उनको टाल्स्टाय सिस्टर्स का नाम दिया था और गिरफ्तार महिलाओं को फीनिक्स सिस्टर्स का नाम दिया था। लेकिन टाल्स्टाय सिस्टर्स फीनिक्स सिस्टर्स की तरह भाग्यशाली साबित नहीं हुईं। ट्रेड परमिट न दिखाने पर भी न तो उन्हें रोका गया और न गिरफ्तार किया गया। कानून की नजर में इस तरह का भेदभाव आंदोलनकारियों के बीच दरार डालने की साजिश थी।

जेल में चारों महिलाओं की हालत दिन पर दिन गिरती जा रही थी। वार्डर्स द्वारा धमकाई जाती थीं और महिला वार्डर्स फोहश इशारे करती थीं। उनकी बीमारियों को अनदेखा किया जा रहा था। जो शकाहारी खाना उन लोगों को दिया जाता था वह सड़ा और बासी होता था। महिला कैदियों ने कहा भी कि वे पैसा देने के लिए तैयार हैं, उन्हें बाहर से खाना मंगा दिया जाये। उनका जवाब था यह जेल है, होटल नहीं। वहां छूत का बुखार फैल गया था। उसमें कमजोरी बढ़ती जाती थी। एक जवान औरत, उसी के कारण, जेल से छूअने के कुछ ही दिन बार मर गयी थी।

कस्तूरबा भी दिन पर दिन अधिक टूटी और थकी हुई लगने लगी थी। हालांकि प्रतिदिन का अपना काम दिन के दिन खत्म कर लेती थी। शाम की प्रार्थना भी उसी निष्ठा से करती थी। लेकिन बा की सहयोगी कम उम्र महिलाएं, काशीबेन और संतोकबेन समझ रही थीं कि वे कितने कष्ट में हैं। कस्तूरबा मन से दुःखी थी। किसी ने सोचा भी था कि गिरफ्तारी के बाद बा के शांत और सहनशील आशावाद को इतनी जटिल परीक्षा से गुजरना पड़ेगा। बा गिरफ्तारी के दिन से ही रामदास के बारे में चिन्तित रहती थी। उधर फीनिक्स से आये पत्र से पता चला था मणिलाल को ट्रांसवाल में सजा हो गयी थी। मणिलाल सबसे शांत और अच्छा लड़का समझा जाता था। तभी समाचार मिला कि मोहनदास भी गिरफ्तार हो गये और उन्हें नौ महीने की सजा सुना दी गयी है। किसी ऐसी जगह कैद किया गया जिसका नाम पहले कभी नहीं सुना था। वह स्वयं, मोहनदास और दो बेटे एक साथ अलग-अलग जेलों में थे। कस्तूर को लगा कि हरिलाल होता तो वह भी किसी और जेल में होता। अपने पिता से उसका तनाव बा को अधिक व्यथित कर रहा था। दोनों के बीच में संवाद का न होना मन को और अधिक पीड़ा पहुंचाता था। जेल का प्रवास और आत्मीयों के बीच का अबोलापन समान रूप से प्रताड़ित करते हैं। जेल की संवादहीनता आरोपित होती है परंतु पिता पुत्र के बीच की संवादहीनता स्वनिर्मित है। जिसे कोई बाह्य कारण जाने-अनजाने रोप जाता है। *...क्रमशः अगले अंक में*

गतिविधियां एवं समाचार

'बा-बापू 150' अक्टूबर 2019 तक चलेगा : देशभर में गांधीजी की 150वीं जयंती मानायी जा रही है। जब इसकी तैयारी 2017 में चल रही थी तो केवल गांधी-150 के नाम पर ही मनाने की घोषणा हो रही थी। लेकिन कई सर्वोदय संगठन इसे 'बा-बापू 150' के नाम पर पिछले कई महीनों से देशभर में कार्यक्रम कर रहे हैं। यह अक्टूबर 2019 तक चलेगा।

गांधीजी का जन्म 2 अक्टूबर 1869 को गुजरात के पोरबंदर में हुआ था। तब से 150 वर्ष बाद सन् 2019 तक भले ही बापू सशरीर न दिखायी दें, लेकिन रोज किसी न किसी सरकारी व गैर-सरकारी संस्थानों के लोग गांधी का नाम लिये नहीं थकते हैं। साथ यही यह भी गौर करना जरूरी है कि कस्तूरबा गांधी केवल बापू की सहधर्मिणी ही नहीं थीं बल्कि इनके योगदान से ही बापू को जीवन में मजबूती मिली है। इस बात को आज गहराई से और अधिक समझने की आवश्यकता है क्योंकि देश वर्तमान में महिलाओं के अधिकार पर अधिक से अधिक गंभीरता दिखा रहा है। इसलिए कस्तूरबा गांधी पर लिखी गयी पुस्तकों को आज की युवा पीढ़ी को पढ़ना चाहिए।

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) बापू के बुनियादी सिद्धांतों पर काम कर रहा है। देश के लगभग सभी राज्यों में भी सर्वोदय मंडल सक्रिय हैं। इसी क्रम में उत्तराखंड सर्वोदय मंडल ने 22 फरवरी 2017 और 11-12 जून 2018 को क्रमशः कोटद्वार और कौसानी में 'बा-बापू 150' मनाने की तैयारी बैठक की है। इस कार्यक्रम को मनाने के लिए सुरेश भाई और राधा बहन के संयोजन में एक संचालन समिति बनायी गयी है। इसके द्वारा महात्मा गांधी के विचारों को उत्तराखंड और पर्यावरण के मुद्दों के साथ जोड़कर जन-जन तक पहुंचाने के लिए अभियान चलाया जायेगा। **–सुरेश भाई**

श्रद्धांजलि

मराठवाड़ा के गांधी डॉ. गंगाप्रसाद अग्रवाल का निधन

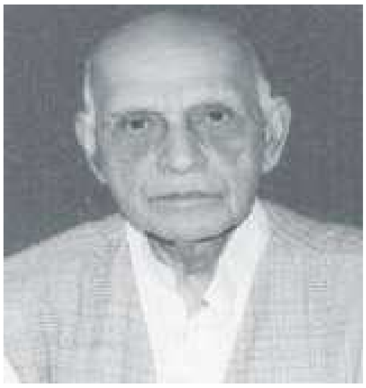

वरिष्ठ गांधीवादी एवं स्वतंत्रता सेनानी डॉ. गंगाप्रसाद अग्रवाल का निधन 11 अक्टूबर, 2018 को महाराष्ट्र के हिंगोली जिले के बसमत में हो गया। वे 98 वर्ष के थे।

सर्व सेवा संघ (अ. भा. सर्वोदय मंडल) के अध्यक्ष महादेव विद्रोही ने एक प्रेस विज्ञप्ति में कहा है कि डॉ. गंगाप्रसादजी के निधन से सर्वोदय आंदोलन ने अपना एक अभिभावक तथा समाज ने एक वरिष्ठ सेवक खो दिया है। हम उन्हें भीनी आंखों से विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं।

डॉ. प्रसादजी ने 1942 में महात्मा गांधी के आह्वान पर कॉलेज छोड़ दिया एवं भारत छोड़ो आंदोलन में शामिल हो गये। गांधीजी ने जब अछूतोद्धार का आंदोलन चलाया तो आप उसमें सक्रिय रहे। दलित परिवारों को सार्वजनिक कुओं से जल प्राप्त हो, इसके लिए आपने अभियान चलाया।

निजाम शासन के अंतर्गत बसमत नगर में हथकरघा श्रमिकों का शोषण होता था एवं वे बुनियादी सुविधाओं से वंचित थे। आपने इस शोषण के विरुद्ध संघर्ष किया।

आजादी के बाद निजाम शासन के विरुद्ध हुए संघर्ष में बहीरजी शिंदे शहीद हुए। इस घटना ने आपको उद्वेलित कर दिया और बहादुरी के साथ आजेगाव में निजाम सैनिकों का मुकाबला किया।

आप भूदान आंदोलन में सक्रिय रहे, आपातकाल के दौरान आपको गिरफ्तार कर नासिक जेल में 19 महीने तक बंद रखा गया। इन्होंने निर्धूम चूल्हा, जैविक खान, लघु एवं कुटीर उद्योग, सहकारी कृषि आदि के क्षेत्र में उल्लेखनीय कार्य किया।

अहमदाबाद एवं भिवंडी में हुए सांप्रदायिक दंगों से आप अत्यन्त व्यथित हुए और 45 दिनों तक उपवास किया।

आपने महाराष्ट्र सर्वोदय मंडल, सर्व सेवा संघ तथा सेवाग्राम आश्रम के अध्यक्ष की जिम्मेवारी भी बखूबी निभायी। आपको सर्वोदय सम्मान, महाराष्ट्र भूषण पुरस्कार, बालासाहेब भारदे पुरस्कार, मराठवाड़ा भूषण पुरस्कार सहित अनेक सम्मानों एवं पुरस्कारों से नवाजा गया।

आपने *युवा भाले सुरू, स्वावलंबी शेती, अणुशक्ति : शाप की वरदान, स्वावलंबनाच्या दिशेने, सजीव खेती* आदि महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का लेखन किया।

–स.ज. प्रतिनिधि

× × ×

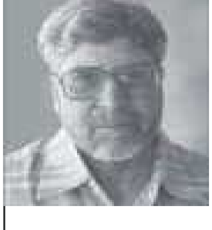

लेखन और पत्रकारिता को नैतिक मूल्यों का अहिंसक औजार मानने वाले **शुभु पटवा** (4-7-1943—11-10-2018) तथा गंगा की अविरलता के लिए अहिंसक सत्याग्रह में अपने प्राण की आहुति देने वाले **प्रो. जी. डी. अग्रवाल ऊर्फ सानंद जी** (20-7-1932—11-10-2018) हमारे बीच नहीं रहे। सर्व सेवा संघ एवं सर्वोदय जगत परिवार की ओर से विनम्र श्रद्धांजलि।**–स.ज. प्रतिनिधि**

कविता

एक आदमी मुझे मिला भदोही में

❑ बोधिसत्व

एक आदमी मुझे मिला
भदोही में,
वह टायर की चप्पल पहने था।
वह ढाका से आया था छिपता-छिपता
कुछ दिनों रहा वह हावड़ा में
एक चटकल में जूट पहचानने
का काम करता रहा
वहां से छटनी के बाद वह गया सूरत
वहां फेरी लगा कर बेचता रहा साड़ियां
वहां भी ठिकाना नहीं लगा
तब आया वह भदोही
टायर की चप्पल पहनकर।

इस बीच उसे बुलाने के लिए
आयी चिट्ठियां, कितनी
बार आये ताराशंकर बनर्जी,
नंदलाल बोस, रवीन्द्रनाथ ठाकुर,
नज़रूल इस्लाम और मुज़ीबुर्रहमान।

सबने उसे मनाया, कहा, लौट चलो ढाका
लौट चलो मुर्शिदाबाद, बोलपुर
वीरभूम कहीं भी।

उसके पास एक चश्मा था,
जिसे उसने ढाका की सड़क से
किसी ईरानी महिला से खरीदा था,
उसके पास एक लालटेन थी
जिसका रंग पता नहीं चलता था
उसका प्रकाश काफी मटमैला होता था,
उसका शीशा टूटा था,
वहां कागज लगाता था वह
जलाते समय।

वह आदमी भदोही में,
खिलाता रहा कालीनों में फूल
दिन और रात की परवाह किये बिना।

जब बूढ़ हुई आंखें
छूट गयी गुल-तराशी, तब भी,
आती रहीं चिट्ठियां, उसे बुलाने
तब भी आये
शक्ति चट्टोपाध्याय, सत्यजीत राय
आये दुबारा,
लकवाग्रस्त नज़रूल उसे मनाने
लौट चलो वहीं...
वहां तुम्हारी जरूरत है अभी भी...।

उसने हाल पूछा नज़रूल का
उन्हें दिये पैसे, आने-जाने का भाड़ा,
एक दरी, थोड़ा-सा ऊन,
विदा कर नज़रूल को
भदोही के पुराने बाजार में
बैठ कर हिलाता रहा सिर।

फिर आनी बंदी हो गयीं चिट्ठियां जैसे
जो आती थीं उन्हें पढ़ने वाला
भदोही में न था कोई।
भदोही में मिली वह ईरानी महिला
अपने चश्मों का बक्सा लिये।

भदोही में उसे मिलने आये
जिन्ना, गांधी की पीठ पर चढ़कर
साथ में थे मुज़ीबुर्रहमान,
जूट का बोरा पहने।

सब जल्दी में थे, जिन्ना को जाना था कहीं
मुज़ीबुर्रहमान सोने के लिए
कोई छाया खोज रहे थे।
वे सोये उसकी मड़ई में...रातभर,
सुबह उनकी मइयत में
वह रो तक नहीं पाया।

गांधी जा रहे थे नोआखाली
रात में, उसने अपनी लालटेन और
चश्मा उन्हें दे दिया,
चलने के पहले वह जल्दी में
पोंछ नहीं पाया, लालटेन का शीशा
ठीक नहीं कर पाया बत्ती,
इसका भी ध्यान नहीं रहा कि
उसमें तेल है कि नहीं।

वह पूछना भूल गया गांधी से कि
उन्हें चश्मा लगाने के बाद
दिखता है कि नहीं।
वह परेशान होकर खोजता रहा
ईरानी महिला को
गांधी को दिलाने के लिए चश्मा
ठीक नम्बर का।

वह गांधी के पीछे-पीछे गया कुछ दूर
रात के उस अंधकार में
उसे दिख नहीं रहा था
कुछ गांधी के सिवा।

उसकी लालटेन लेकर
गांधी गये बहुत तेज चाल से
वह हांफता हुआ दौड़ता रहा
कुछ दूर तक, गांधी के पीछे,
पर गांधी निकल गये आगे
वह लौट आया भदोही
अपनी मड़ई तक...जो जल चुकी थी
गांधी के जाने के बाद ही।

वह जली हुई मड़ई के पूरब खड़ा था
टायर की चप्पल पहनकर
भदोही में, गांधी की राह देखता।
गांधी पता नहीं किस रास्ते
निकल गये नोआखाली से दिल्ली
उसने गांधी की फोटो देखी
उसने गांधी का रोना सुना,
गांधी का इंतजार करते मर गयी
वह ईरानी महिला
भदोही के बुनकरों के साथ ही।
उसके चश्मों का बक्सा भदोही के बड़े
तालाब के किनारे मिला, बिखरा उसे,
जिसमें गांधी की फोटो थी जली हुई।

फिर उसने सुना
बीमार नज़रूल भीख मांग कर मरे
ढाका के आस-पास कहीं,
उसने सुना रवीन्द्र बाउल गा कर अपना
पेट जिला जिला रहे हैं वीरभूमि में
उसने सुना, लाखों लोग मरे
बंगाल में अकाल,
उसने पूरब की एक-एक झनक सुनी।

एक आदमी मुझे मिला भदोही में,
वह टायर की चप्पल पहने था
उसे कुछ दिख नहीं रहा था
उसे चोट लगी थी बहुत
वह चल नहीं पा रहा था।
उसके घावों पर ऊन के रेशे चिपके थे
जबकि गुल-तलाशी छोड़े बीत गये थे
बहुत दिन! बहुत दिन! ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।